ऋग्वेदा[illegible]का

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विता ॥

अजमेरनगरे

वैदिकयन्त्रालये

मुद्रिता.

संवत् १९८५ दयानन्दजन्माब्दः १०४.

द्वि० श्रावणकृष्णा

छठीवार
५०००

मूल्यम् १।≈)
डाकव्यय ।–)

ओ३म्

अथ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाविषयसूचीपत्रम् ॥

इति ॥

ओ३म् ॥

अथ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥ तैत्तिरीय आरण्यके । नवमप्रपाठके प्रथमानुवाके ॥

ब्रह्मानन्तमनादि विश्वकृदजं सत्यं परं शाश्वतं, विद्या यस्य सनातनी निगमभृद्वैधर्म्यविध्वंसिनी । वेदाख्या विमला हिता हि जगते नृभ्यः सुभाग्यप्रदा, तन्नत्वा निगमार्थभाष्यमतिना भाष्यं तु तन्तन्यते ॥ १ ॥ कालरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे भाद्रमासे सिते दले । प्रतिपद्यादित्यवारे भाष्यारम्भः कृतो मया ॥ २ ॥ दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः, सरस्वत्यस्याग्रे निवसति हिता हीशशरणा । इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा वेदमनना ऽस्त्यनेनेदं भाष्यं रचितमिति बोद्धव्यमनघाः ॥ ३ ॥ मनुष्येभ्यो हितायैव सत्यार्थं सत्यमानतः । ईश्वरानुग्रहेणेदं वेदभाष्यं विधीयते ॥ ४ ॥ संस्कृतप्राकृताभ्यां यद्भाषाभ्यामन्वितं शुभम् । मन्त्रार्थवर्णनं चात्र क्रियते कामधुङ्मया ॥ ५ ॥ आर्य्याणां मुन्यृषीणां या व्याख्यारीतिः सनातनी । तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विधास्यन्ते तु नान्यथा ॥ ६ ॥ येनाधुनिकभाष्यैर्ये टीकाभिर्वेददूषकाः । दोषाः सर्वे विनश्येयुरन्यथार्थविवर्णनाः ॥ ७ ॥ सत्यार्थश्च प्रकाश्येत वेदानां यः सनातनः । ईश्वरस्य सहायेन प्रयत्नोऽयं सुसिध्यताम् ॥ ८ ॥

भाषार्थ

(सह नाव०) हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! आप की कृपा, रक्षा और सहाय से हम लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें, (सह नौ भु०) और हम सब लोग परमप्रीति से मिल के सब से उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्त्ति राज्य आदि सामग्री से आनन्द को आप के अनुग्रह से सदा भोगें, (सहवी०) हे कृपानिधे ! आपके सहाय से हम लोग एक दूसरे के सामर्थ्य को पुरुषार्थ से सदा बढ़ाते रहें, (तेजस्वि०) और हे प्रकाशमय सब विद्या

के देनेवाले परमेश्वर! आप के सामर्थ्य से ही हम लोगों का पढ़ा और पढ़ाया सब संसार में प्रकाश को प्राप्त हो और हमारी विद्या सदा बढ़ती रहे, (मा विद्विषा०) हे प्रीति के उत्पादक! आप ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें किन्तु एक दूसरे के मित्र होके सदा वर्त्तें। (ओं शान्तिः०) हे भगवन् ! आपकी करुणा से हम लोगों के तीन ताप एक (आध्यात्मिक) जो कि ज्वरादि रोगों से शरीर में पीड़ा होती है, दूसरा (आधिभौतिक) जो दूसरे प्राणियों से होता है और तीसरा (आधि-दैविक) जो कि मन और इन्द्रियों के विकार, अशुद्धि और चञ्चलता से क्लेश होता है। इन तीनों तापों को आप शान्त अर्थात् निवारण कर दीजिये, जिससे हम लोग सुख से इस वेदभाष्य को यथावत् बना के सब मनुष्यों का उपकार करें। यही आपसे चाहते हैं, सो कृपा करके हम लोगों को सब दिनों के लिये सहाय कीजिये ॥ १ ॥

(ब्रह्मानन्त०) जो ब्रह्म अनन्त आदि विशेषणों से युक्त है, जिसकी वेदविद्या सनातन है, उसको अत्यन्त प्रेम भक्ति से मैं नमस्कार करके इस वेदभाष्य के बनाने का आरम्भ करता हूं ॥ १ ॥ (कालरा०) विक्रम के संवत् १९३३ भाद्रमास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, रविवार के दिन इस वेदभाष्य का आरम्भ मैंने किया है ॥ २ ॥ (दयाया०) सब सज्जन लोगों को यह बात विदित हो कि जिनका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है उन्होंने इस वेदभाष्य को रचा है ॥ ३ ॥ (मनुष्ये०) ईश्वर की कृपा के सहाय से सब मनुष्यों के हित के लिये इस वेदभाष्य का विधान मैं करता हूं ॥ ४ ॥ (संस्कृतप्रा०) सो यह वेदभाष्य दो भाषाओं में किया जाता है एक संस्कृत और दूसरी प्राकृत, इन दोनों भाषाओं में वेदमन्त्रों के अर्थ का वर्णन मैं करता हूं ॥ ५ ॥ (आर्य्याणां०) इस वेदभाष्य में अप्रमाण लेख कुछ भी नहीं किया जाता है, किन्तु जो ब्रह्मा से ले के व्यासपर्य्यन्त मुनि और ऋषि हुए हैं उनकी जो व्याख्यारीति है उससे युक्त ही यह वेदभाष्य बनाया जायगा ॥ ६॥ (येनाधु०) यह भाष्य ऐसा होगा कि जिससे वेदार्थ से विरुद्ध अब के बने भाष्य और टीकाओं से वेदों में भ्रम से जो मिथ्या दोषों के आरोप हुए हैं वे सब निवृत्त हो जायंगे ॥ ७ ॥ (सत्या-र्थश्च०) और इस भाष्य से वेदों का जो सत्य अर्थ है सो संसार में प्रसिद्ध हो, कि वेदों के सनातन अर्थ को सब लोग यथावत् जान लें, इसलिये यह प्रयत्न मैं करता हूं सो परमेश्वर के सहाय से यह काम अच्छे प्रकार सिद्ध हो यही सर्वशक्तिमान् पर-मेश्वर से मेरी प्रार्थना है ॥ ८ ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥१॥
यजुर्वेदे । अध्याये ३० । मन्त्रः ३ ॥

भाष्यम्

हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप ! हे परमकारुणिक ! हे अनन्तविद्य ! हे विद्याविज्ञान-प्रद (देव) हे सूर्यादिसर्वजगद्विद्याप्रकाशक ! हे सर्वानन्दप्रद ! (सवितः) हे सकल-जगदुत्पादक ! (नः) अस्माकम् (विश्वानि) सर्वाणि (दुरितानि) दुःखानि सर्वान्दुष्टगुणांश्च (परासुव) दूरे गमय, (यद्भद्रं) यत्कल्याणं सर्वदुःखरहितं सत्य-विद्याप्राप्त्याऽभ्युदयनिःश्रेयससुखकरं भद्रमस्ति (तन्नः) अस्मभ्यं (आसुव) आ स-मन्तादुत्पादय कृपया प्रापय । अस्मिन् वेदभाष्यकरणानुष्ठाने ये दुष्टा विघ्नास्तान् प्राप्तेः पूर्वमेव परासुव दूरं गमय, यच्च शरीरबुद्धिसहायकौशलसत्यविद्याप्रकाशादि भद्रमस्ति तत्स्वकृपाकटाक्षेण हे परब्रह्मन् ! नोऽस्मभ्यं प्रापय, भवत्कृपाकटाक्षसुसहा-यप्राप्त्या सत्यविद्योज्ज्वलं प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धं भवद्रचितानां वेदानां यथार्थं भाष्यं वयं विदधीमहि । तदिदं सर्वमनुष्योपकाराय भवत्कृपया भवेत् । अस्मिन् वेदभाष्ये सर्वेषां मनुष्याणां परमश्रद्धयाऽत्यन्ता प्रीतिर्यथा स्यात् तथैव भवता कार्यमित्योम् ॥

भाषार्थ

हे सत्यस्वरूप ! हे विज्ञानमय ! हे सदानन्दस्वरूप ! हे अनन्तसामर्थ्ययुक्त ! हे परमकृपालो ! हे अनन्तविद्यामय ! हे विज्ञानविद्याप्रद ! (देव) हे परमेश्वर ! आप सूर्यादि सब जगत् का और विद्या का प्रकाश करने वाले हो तथा सब आनन्दों के देने वाले हो, (सवितः) हे सर्वजगदुत्पादक सर्वशक्तिमन् ! आप सब जगत् को उत्पन्न करने वाले हो, (नः) हमारे (विश्वानि) सब जो (दुरितानि) दुःख हैं उन को और हमारे सब दुष्ट गुणों को कृपा से आप (परासुव) दूर कर दीजिये अर्थात् हम से उन को और हम को उन से सदा दूर रखिये, (यद्भद्रं) और जो सब दुःखों से रहित कल्याण है, जो कि सब सुखों से युक्त भोग है, उस को हमारे लिये सब दिनों में प्राप्त कीजिये। सो सुख दो प्रकार का है एक जो सत्यविद्या की प्राप्ति में अभ्युदय अर्थात् चक्रवर्त्ति राज्य इष्ट मित्र धन पुत्र स्त्री और शरीर से अत्यन्त उत्तम सुख का होना और दूसरा जो निःश्रेयस सुख है कि जिस को मोक्ष कहते हैं और जिस में ये दोनों सुख होते हैं उसी को भद्र कहते हैं । (तन्न आसुव) उस सुख को आप हमारे लिये सब प्रकार से प्राप्त करिये और आप की कृपा के सहाय से सब विघ्न हम से दूर रहें, कि जिससे

इस वेदभाष्य के करने का हमारा अनुष्ठान सुख से पूरा हो। इस अनुष्ठान में हमारे शरीर में आरोग्य, बुद्धि, सज्जनों का सहाय, चतुरता और सत्यविद्या का प्रकाश सदा बढ़ता रहे। इस भद्रस्वरूप सुख को आप अपनी सामर्थ्य से ही हम को दीजिये, जिस कृपा के सामर्थ्य से हम लोग सत्यविद्या से युक्त जो आप के बनाये वेद हैं उन के यथार्थ अर्थ से युक्त भाष्य को सुख से विधान करें। सो यह वेदभाष्य आप की कृपा से संपूर्ण हो के सब मनुष्यों का सदा उपकार करनेवाला हो और आप अन्तर्यामी की प्रेरणा से सब मनुष्यों का इस वेदभाष्य में श्रद्धासहित अत्यन्त उत्साह हो, जिससे वेदभाष्य करने में जो हम लोगों का प्रयत्न है सो यथावत् सिद्धि को प्राप्त हो। इसी प्रकार से आप हमारे और सब जगत् के ऊपर कृपादृष्टि करते रहें, जिससे इस बड़े सत्य काम को हम लोग सहज से सिद्ध करें ॥ १ ॥

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ॥ स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥ यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् । दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ २ ॥ यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः । अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३ ॥ यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् । दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ४ ॥ अथर्ववेदसंहितायाम् । काण्डे १० । प्रपाठके २३ । अनुवाके ४ । सूक्ते ८ । मं० १ । तथा सूक्ते ७ । मं० ३२ । ३३ । ३४ ॥

भाष्यम्

(यो भूतं च०) यो भूतभविष्यद्वर्तमानान् कालान् (सर्वं यश्चाधि०) सर्वं जगच्चाधितिष्ठति, सर्वाधिष्ठाता सन् कालादूर्ध्वं विराजमानोऽस्ति । (स्वर्य०) यस्य च केवलं निर्विकारं स्वः सुखस्वरूपमस्ति, यस्मिन् दुःखं लेशमात्रमपि नास्ति, यदानन्दघनं ब्रह्मास्ति, (तस्मै ज्ये०) तस्मै ज्येष्ठाय सर्वोत्कृष्टाय ब्रह्मणे महतेऽत्यन्तं नमोऽस्तु नः ॥ १ ॥ (यस्य भू०) यस्य भूमिः प्रमा यथार्थज्ञानसाधनं पादाविवास्ति, (अन्तरिक्षमु०) अन्तरिक्षं यस्योदरतुल्यमस्ति, यश्च सर्वस्मादूर्ध्वं सूर्यरश्मिप्रकाशमयमाकाशं दिवं मूर्द्धानं शिरोवच्चक्रे कृतवानस्ति, तस्मै० ॥ २ ॥ (यस्य सू०) यस्य सूर्यश्चन्द्रमाश्च पुनः पुनः सर्गादौ नवीने चक्षुषी इव भवतः, योऽग्निमास्यं मुखवच्चक्रे कृतवानस्ति, तस्मै० ॥ ३ ॥ (यस्य वातः०) वातः समष्टिर्वायुर्यस्य

प्राणापानाविवास्ति, (अङ्गिरसः) अङ्गिरा अङ्गारा अङ्कना अञ्चना इति निरुक्ते अ० ३ । खं० १७ ॥ प्रकाशिकाः किरणाश्चक्षुषी इव भवतः, यो दिशः प्रज्ञानीः प्रज्ञापिनीर्व्यवहारसाधिकाश्चक्रे, तस्मै ह्यनन्तविद्याय ब्रह्मणे महते सततं नमोऽस्तु ॥ ४ ॥

भाषार्थ

(यो भूतं च०) जो परमेश्वर एक भूतकाल जो व्यतीत होगया है, (च) अनेक चकारों से दूसरा जो वर्त्तमान है (भव्यं च) और तीसरा भविष्यत् जो होनेवाला है, इन तीनों कालों के बीचमें जो कुछ होता है उन सब व्यवहारों को वह यथावत् जानता है, (सर्वं यश्चाधितिष्ठति) तथा जो सब जगत् को अपने विज्ञान से ही जानता रचता पालन लय करता और संसार के सब पदार्थों का अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है, (स्वर्यस्य च केवलं) जिस का सुख ही केवल स्वरूप है, जो कि मोक्ष और व्यवहार-सुख का भी देने वाला है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) ज्येष्ठ अर्थात् सब से बड़ा सब सामर्थ्य से युक्त ब्रह्म जो परमात्मा है उस को अत्यन्त प्रेम से हमारा नमस्कार हो । जो कि सब कालों के ऊपर विराजमान है, जिस को लेशमात्र भी दुःख नहीं होता उस आनन्दघन परमेश्वर को हमारा नमस्कार प्राप्त हो ॥ १ ॥ (यस्य भूमिः प्रमा०) जिस परमेश्वर के होने और ज्ञान में भूमि जो पृथिवी आदि पदार्थ हैं सो प्रमा अर्थात् यथार्थज्ञान की सिद्धि होने का दृष्टान्त है तथा जिसने अपनी सृष्टि में पृथिवी को पा-दस्थानी रचा है, (अन्तरिक्षमुतोदरम्) अन्तरिक्ष जो पृथिवी और सूर्य के बीच में आ-काश है सो जिसने उदरस्थानी किया है, (दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानम्) और जिसने अपनी सृष्टि में दिव अर्थात् प्रकाश करनेवाले पदार्थों को सब के ऊपर मस्तकस्थानी किया है अर्थात् जो पृथिवी से लेके सूर्यलोकपर्यन्त सब जगत् को रच के, उसमें व्यापक होके, जगत् के सब अवयवों में पूर्ण होके सब को धारण कर रहा है (तस्मै०) उस पर-ब्रह्म को हमारा अत्यन्त नमस्कार हो ॥ २ ॥ (यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्र०) और जिसने नेत्रस्थानी सूर्य और चन्द्रमा को किया है, जो कल्प २ के आदि में सूर्य और चन्द्रमादि पदार्थों को वारंवार नये २ रचता है, (अग्निं यश्चक्र आस्यम्) और जिसने मुखस्थानी अग्नि को उत्पन्न किया है (तस्मै०) उसी ब्रह्म को हम लोगों का नमस्कार हो ॥ ३ ॥ (यस्य वातः प्राणापानौ) जिसने ब्रह्माण्ड के वायु को प्राण और अपान की नाईं किया है, (चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्) तथा जो प्रकाश करनेवाली किरण हैं वे चक्षु की नाईं जिस-

ने की हैं अर्थात् उनसे ही रूप ग्रहण होता है, (दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्त०) और जिस-ने दश दिशाओं को सब व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली बनाई हैं ऐसा जो अनन्त विद्यायुक्त परमात्मा सब मनुष्यों का इष्टदेव है उस ब्रह्म को निरन्तर हमारा नमस्कार हो ॥ ४ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥ यजु० अ० २५ । मं० १३ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ ६ ॥ यतो यतः समीहसे ततो नो अभयङ्कुरु । शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ ७ ॥ यजु० अ० ३६ । मं० १७ । २२ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिंश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ८ ॥ यजु० अ० ३४ । मं० ५ ॥

भाष्यम्

(य आत्मदाः) य आत्मदा विद्याविज्ञानप्रदः, (बलदाः) यः शरीरेन्द्रियप्राणात्ममनसां पुष्ट्युत्साहपराक्रमदृढत्वप्रदः, (यस्य०) यं विश्वेदेवाः सर्वे विद्वांस उपासते यस्यानुशासनं च मन्यन्ते, (यस्यच्छाया०) यस्याश्रय एव मोक्षोऽस्ति, यस्यच्छायाऽकृपाऽनाश्रयो मृत्युर्जन्ममरणकारकोऽस्ति, (कस्मै०) तस्मै कस्मै प्रजापतये "प्रजापतिर्वै क"स्तस्मै हविषा विधेमेति । शतपथब्राह्मणे । काण्डे ७ । अ० ३ ॥ सुखस्वरूपाय ब्रह्मणे देवाय प्रेमभक्तिरूपेण हविषा वयं विधेम, सततं तस्यैवोपासनं कुर्वीमहि ॥ ५ ॥ (द्यौः शान्तिः०) हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! त्वद्भक्त्या त्वत्कृपया च द्यौर,न्तरिक्षं, पृथिवी, जलमो,षधयो वनस्पतयो, विश्वेदेवाः सर्वे विद्वांसो, ब्रह्म वेदः, सर्वं जगच्चास्मदर्थं शान्तं निरुपद्रवं सुखकारकं सर्वदास्तु । अनुकूलं भवतु नः । येन वयं वेदभाष्यं सुखेन विदधीमहि । हे भगवन् ! एतया सर्वशान्त्या विद्याबुद्धिविज्ञानारोग्यसर्वोत्तमसहायैर्भवान् मां सर्वथा वर्धयतु तथा सर्वं जगच्च ॥ ६ ॥ (यतो य०) हे परमेश्वर ! यतो यतो देशात्त्वं समीहसे, जगद्रच-

नपालनार्थां चेष्टां करोषि, ततस्ततो देशान्नोऽस्मानभयं कुरु, यतः सर्वथा सर्वेभ्यो देशेभ्यो भयरहिता भवत्कृपया वयं भवेम, (शन्नः कु०) तथा तत्रस्थाभ्यः प्रजाभ्यः पशुभ्यश्च नोऽस्मानभयं कुरु । एवं सर्वेभ्यो देशेभ्यस्तत्रस्थाभ्यः प्रजाभ्यः पशुभ्यश्च नोऽस्मान् शं कुरु, धर्मार्थकाममोक्षादिसुखयुक्तान् स्वानुग्रहेण सद्यः संपादय ॥ ७ ॥ (यस्मिन्नृ०) हे भगवन् कृपानिधे ! यस्मिन्मनसि ऋचः सामानि यजूंषि च प्रतिष्ठितानि भवन्ति, यस्मिन् यथार्थमोक्षविद्या च प्रतिष्ठिता भवति, (यस्मिंश्चि०) यस्मिंश्च प्रजानां चित्तं स्मरणात्मकं सर्वमोतमस्ति सूत्रे मणिगणवत्प्रोतमस्ति, कस्यां क इव ? रथनाभौ अरा इव, तन्मे मम मनो भवत्कृपया शिवसंकल्पं कल्याणप्रियं सत्यार्थप्रकाशं चास्तु, येन वेदानां सत्यार्थः प्रकाश्येत । हे सर्वविद्यामय सर्वार्थविन् ! मदुपरि कृपां विधेहि, यथा निर्विघ्नेन वेदार्थभाष्यं सत्यार्थं पूर्णं वयं कुर्वीमहि, भवद्यशो वेदानां सत्यार्थं विस्तारयेमहि । यं दृष्ट्वा वयं सर्वे सर्वोत्कृष्टगुणा भवेम । ईदृशीं करुणामस्माकमुपरि करोतु भवान् । एतदर्थं प्रार्थ्यते । अनया प्रार्थनयाऽस्मान् शीघ्रमेवानुगृह्णातु । यत इदं सर्वोपकारकं कृत्यं सिद्धं भवेत् ॥

भाषार्थ

(य आत्मदाः०) जो जगदीश्वर अपनी कृपा से ही अपने आत्मा का विज्ञान देने वाला है, जो सब विद्या और सत्य सुखों की प्राप्ति करानेवाला है, जिस की उपासना सब विद्वान् लोग करते आये हैं और जिसका अनुशासन जो वेदोक्त शिक्षा है उस को अत्यन्त मान्य से सब शिष्ट लोग स्वीकार करते हैं, जिस का आश्रय करना ही मोक्षसुख का कारण है और जिसकी अकृपा ही जन्ममरणरूप दुःखों को देनेवाली है अर्थात् ईश्वर और उसका उपदेश जो सत्यविद्या सत्यधर्म और सत्य मोक्ष हैं उनको नहीं मानना और जो वेद से विरुद्ध हो के अपनी कपोलकल्पना अर्थात् दुष्ट इच्छा से बुरे कामों में वर्त्तता है उस पर ईश्वर की अकृपा होती है वही सब दुःखों का कारण है और जिसकी आज्ञापालन ही सब सुखों का मूल है (कस्मै०) जो सुखस्वरूप और सब प्रजा का पति है उस परमेश्वर देव की प्राप्ति के लिये सत्य प्रेम भक्तिरूप सामग्री से हम लोग नित्य भजन करें, जिससे हम लोगों को किसी प्रकार का दुःख कभी न हो ॥ ५ ॥ (द्यौः शा०) हे सर्वशक्तिमन् भगवन् ! आप की भक्ति और कृपा से ही (द्यौः) जो सूर्यादि लोकों का प्रकाश और विज्ञान है यह सब दिन हमको सुखदायक हो तथा जो आकाश में पृथिवी जल ओषधि वनस्पति वट आदि वृक्ष, जो

संसार के सब विद्वान्, ब्रह्म जो वेद, ये सब पदार्थ और इनसे भिन्न भी जो जगत् है वे सब सुख देनेवाले हम को सब काल में हों कि सब पदार्थ सब दिन हमारे अनुकूल रहें, जिससे इस वेदभाष्य के काम को सुखपूर्वक हम लोग सिद्ध करें । हे भगवन् ! इस सब शान्ति से हम को विद्या बुद्धि विज्ञान आरोग्य और सब उत्तम सहाय को कृपा से दीजिये तथा हम लोगों और सब जगत् को उत्तम गुण और सुख के दान से बढ़ाइये ॥ ६ ॥ (यतो य०) हे परमेश्वर ! आप जिस २ देश से जगत् के रचन और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस २ देश से भय से रहित करिये अर्थात् किसी देश से हम को किञ्चित् भी भय न हो (शन्नः कुरु०) वैसे ही सब दिशाओं में जो आप की प्रजा और पशु हैं उन से भी हम को भयरहित करें, तथा हम से उनको सुख हो और उनको भी हम से भय न हो तथा आप की प्रजा में जो मनुष्य और पशु आदि हैं उन सबसे जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष पदार्थ हैं उनको आपके अनुग्रह से हम लोग शीघ्र प्राप्त हों जिससे मनुष्यजन्म के धर्मादि जो फल हैं वे सुख से सिद्ध हों ॥७॥ (यस्मिन्नृचः०) हे भगवन् कृपानिधे ! (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूँषि) यजुर्वेद और इन तीनों के अन्तर्गत होने से अथर्ववेद भी ये सब जिस में स्थिर होते हैं तथा जिसमें मोक्षविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या और सत्यासत्य का प्रकाश होता है (यस्मिँश्चि०) जिसमें सब प्रजा का चित्त जो स्मरण करने की वृत्ति है सो सब गँठी हुई है जैसे माला के मणिएं सूत्र में गँठे हुये होते हैं और जैसे रथ के पहिये के बीच के भाग में आरे लगे रहते हैं कि उस काष्ठ में जैसे अन्य काष्ठ लगे रहते हैं ऐसा जो मेरा मन है सो आपकी कृपा से शुद्ध हो तथा कल्याण जो मोक्ष और सत्य धर्म का अनुष्ठान तथा असत्य के परित्याग करने का संकल्प जो इच्छा है इससे युक्त सदा हो, जिस मन से हम लोगों को आपके किये वेदों के सत्य अर्थ का यथावत् प्रकाश हो। हे सर्वविद्यामय सर्वार्थवित् जगदीश्वर ! हम पर आप कृपा धारण करें जिससे हम लोग विघ्नों से सदा अलग रहें और सत्य अर्थ सहित इस वेदभाष्य को संपूर्ण बना के आपके बनाए वेदों के सत्य अर्थ की विस्ताररूप जो कीर्ति है उसको जगत् में सदा के लिये बढ़ावें और इस भाष्य को देख के वेदों के अनुसार सत्य का अनुष्ठान करके हम सब लोग श्रेष्ठ गुणों से युक्त सदा हों इसलिये हम लोग आपकी प्रार्थना प्रेम से सदा करते हैं। इसको आप कृपा से शीघ्र सुनें। जिससे यह जो सबका उपकार करनेवाला वेदभाष्य का अनुष्ठान है सो यथावत् सिद्धि को प्राप्त हो ॥

इतीश्वरप्रार्थनाविषयः ॥

अथ वेदोत्पत्तिविषयः ॥



तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ ऋच॒ः सामा॑नि जज्ञिरे । छन्दा॑ꣳसि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑दजायत ॥ १ ॥ यजु० अ० ३१ । मं० ७ ॥

यस्मा॒दृचो॑ अ॒पात॑क्ष॒न् यजु॒र्यस्मा॑द॒पाक॑षन् । सामा॑नि॒ यस्य॒ लोमा॑न्यथर्वाङ्गि॒रसो॒ मुख॑म् । स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि॒ क॒त॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १० । प्रपा० २३ । अनु० ४ । सू० ७ । मं० २० ॥

भाष्यम्

(तस्माद्यज्ञात्स०) तस्माद्यज्ञात्सच्चिदानन्दादिलक्षणात्पूर्णात्पुरुषात् सर्वहुतात्सर्वपूज्यात्सर्वोपास्यात्सर्वशक्तिमतः परब्रह्मणः (ऋचः) ऋग्वेदः, (यजुः) यजुर्वेदः, (सामानि) सामवेदः, (छन्दांꣳसि) अथर्ववेदश्च (जज्ञिरे) चत्वारो वेदास्तेनैव प्रकाशिता इति वेद्यम् । सर्वहुत इति वेदानामपि विशेषणं भवितुमर्हति, वेदाः सर्वहुतः । यतः सर्वमनुष्यैर्होतुमादातुं ग्रहीतुं योग्याः सन्त्यतः । जज्ञिरे अजायतेति क्रियाद्वयं वेदानामनेकविद्यावत्त्वद्योतनार्थम् । तथा तस्मादिति पदद्वयमीश्वरादेव वेदा जाता इत्यवधारणार्थम् । वेदानां गायत्र्यादिच्छन्दोन्वितत्वात्पुनश्छन्दांसीतिपदं चतुर्थस्याथर्ववेदस्योत्पत्तिं ज्ञापयतीत्यवधेयम् । यज्ञो वै विष्णुः ॥ श० कां० १ । अ० १ । ब्रा० २ । कं० १३ । इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ॥ य० अ० ५ । मं० १५ । इति सर्वजगत्कर्तृत्वं विष्णौ परमेश्वर एव घटते नान्यत्र । वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः परमेश्वरः ॥१॥ (यस्मादृचो०) यस्मात्सर्वशक्तिमतः ऋचः ऋग्वेदः (अपातक्षन्) अपातक्षत् उत्पन्नोस्ति, यस्मात् परब्रह्मणः (यजुः) यजुर्वेदः अपाकषन् प्रादुर्भूतोस्ति, तथैव यस्मात्सामानि सामवेदः (आङ्गिरसः) अथर्ववेदश्चोत्पन्नौ स्तः, एवमेव यस्येश्वरस्याङ्गिरसोऽथर्ववेदो मुखं मुखवत् मुख्योस्ति, सामानि लोमानीव सन्ति, यजुर्यस्य हृदयमृचः प्राणश्चेति रूपकालङ्कारः । यस्माच्चत्वारो वेदा उत्पन्नाः स कतमः स्विद्देवोस्ति तं त्वं ब्रूहीति प्रश्नः ? अस्योत्तरम् (स्कम्भं तं०) तं स्कम्भं सर्वजगद्धारकं परमेश्वरं त्वं जानीहीति, तस्मात्स्कम्भात्सर्वाधारात्परमेश्वरात् पृथक्

कश्चिदप्यन्यो देवो वेदकर्त्ता नैवास्तीति मन्तव्यम् ॥ २ ॥ एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः ॥ श० कां० १४। अ० ५ । ब्रा० ४ । क० १० ॥ अस्यायमभिप्रायः । याज्ञवल्क्योभिवदति । हे मैत्रेयि ! महत आकाशादपि बृहतः परमेश्वरस्यैव सकाशादृग्वेदादिवेदचतुष्टयं (निःश्वसितं) निःश्वासवत्सहजतया निःसृतमस्तीति वेद्यम् । यथा शरीराच्छ्वासो निःसृत्य पुनस्तदेव प्रविशति तथैवेश्वराद्वेदानां प्रादुर्भावतिरोभावौ भवत इति निश्चयः ॥

भाषार्थ

प्रथम ईश्वर को नमस्कार और प्रार्थना करके पश्चात् वेदों की उत्पत्ति का विषय लिखा जाता है कि वेद किसने उत्पन्न किये हैं। (तस्मात् यज्ञात्स०) सत् जिसका कभी नाश नहीं होता, चित् जो सदा ज्ञानस्वरूप है जिसको अज्ञान का लेश भी कभी नहीं होता, आनन्द जो सदा सुखस्वरूप और सब को सुख देने वाला है इत्यादि लक्षणों से युक्त पुरुष जो सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, जो सब मनुष्यों को उपासना के योग्य इष्टदेव और सब सामर्थ्य से युक्त है उसी परब्रह्म से (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद और (छन्दांसि) इस शब्द से अथर्व भी ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं, इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि वेदों का ग्रहण करें और वेदोक्त रीति से ही चलें ।(जज्ञिरे) और (अजायत) इन दोनों क्रियाओं के अधिक होने से वेद अनेक विद्याओं से युक्त हैं ऐसा जाना जाता है। वैसे ही (तस्मात्) इन दोनों पदों के अधिक होने से यह निश्चय जानना चाहिये कि ईश्वर से ही वेद उत्पन्न हुए हैं, किसी मनुष्य से नहीं । वेदों में सब मन्त्र गायत्र्यादि छन्दों से युक्त ही हैं फिर (छन्दांसि) इस पद के कहने से चौथा जो अथर्ववेद है उसकी उत्पत्ति का प्रकाश होता है। शतपथ आदि ब्राह्मण और वेदमन्त्रों के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि यज्ञ शब्द से विष्णु का और विष्णु शब्द से सर्वव्यापक जो परमेश्वर है उसी का ग्रहण होता है, क्योंकि सब जगत् की उत्पत्ति करनी परमेश्वर में ही घटती है अन्यत्र नहीं ॥ १ ॥ (यस्मादृचो अपा०) जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है उसी से (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद (आङ्गिरसः) अथर्ववेद ये चारों उत्पन्न हुए हैं । इसी प्रकार रूपकालङ्कार से वेदों की उत्पत्ति का प्रकाश ईश्वर करता है कि अथर्ववेद मेरे मुख के समतुल्य, सामवेद लोमों के समान, यजुर्वेद हृदय के समान और ऋग्वेद प्राण की नाईं है।

(ब्रूहि कतमः स्विदेव सः) कि चारों वेद जिससे उत्पन्न हुए हैं सो कौनसा देव है उसको तुम मुझ से कहो। इस प्रश्न का यह उत्तर है कि (स्कम्भं तं०) जो सब जगत् का धारण-कर्त्ता परमेश्वर है उसका नाम स्कम्भ है, उसी को तुम वेदों का कर्त्ता जानो और यह भी जानो कि उसको छोड़ के मनुष्यों को उपासना करने के योग्य दूसरा कोई इष्ट-देव नहीं है, क्योंकि ऐसा अभागा कौन मनुष्य है जो वेदों के कर्त्ता सर्वशक्तिमान् पर-मेश्वर को छोड़ के दूसरे को परमेश्वर मान के उपासना करे ॥ २ ॥ (एवं वा अरे-स्य०) याज्ञवल्क्य महाविद्वान् जो महर्षि हुए हैं वह अपनी पण्डिता मैत्रेयी स्त्री को उपदेश करते हैं कि हे मैत्रेयि! जो आकाशादि से भी बड़ा सर्वव्यापक परमेश्वर है उससे ही ऋक् यजुः साम और अथर्व ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं, जैसे मनुष्य के शरीर से श्वासा बाहर को आ के फिर भीतर को जाती है इसी प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाश करता है और प्रलय में संसार में वेद नहीं रहते, परन्तु उसके ज्ञान के भीतर वे सदा बने रहते हैं, बीजाङ्कु-रवत्। जैसे बीज में अङ्कुर प्रथम ही रहता है, वही वृक्षरूप हो के फिर भी बीज के भीतर रहता है, इसी प्रकार से वेद भी ईश्वर के ज्ञान में सब दिन बने रहते हैं, उनका नाश कभी नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वर की विद्या है, इससे इनको नित्य ही जानना।

अत्र केचिदाहुः। निरवयवात्परमेश्वराच्छब्दमयो वेदः कथमुत्पद्येतेति? अत्र ब्रूमः। न सर्वशक्तिमतीश्वरे शङ्केयमुपपद्यते। कुतः। मुखप्राणादिसाधनमन्तरापि तस्य कार्यं कर्त्तुं सामर्थ्यस्य सदैव विद्यमानत्वात्। अन्यच्च यथा मनसि विचार-णावसरे प्रश्नोत्तरादिशब्दोच्चारणं भवति तथेश्वरेपि मन्यताम्। योस्ति खलु सर्वशक्तिमान् स नैव कस्यापि सहायं कार्य्यं कर्त्तुं गृह्णाति। यथास्मदादीनां सहा-येन विना कार्यं कर्त्तुं सामर्थ्यं नास्ति। न चैवमीश्वरे। यदा निरवयवेनेश्वरेण सकलं जगद्रचितं तदा वेदरचने का शङ्कास्ति। कुतः। वेदस्य सूक्ष्मरचनवज्ज-गत्यपि महदाश्चर्यभूतं रचनमीश्वरेण कृतमस्त्यतः।

भाषार्थ

इस विषय में कितने ही पुरुष ऐसा प्रश्न करते हैं कि ईश्वर निराकार है उससे शब्द-रूप वेद कैसे उत्पन्न हो सके हैं? इस का यह उत्तर है कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है, उस में ऐसी शङ्का करनी सर्वथा व्यर्थ है, क्योंकि मुख और प्राणादि साधनों के विना

मनुष्य को हो सकता है, उसके पढ़ने और ज्ञान से विना कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं हो सकता। जैसे इस समय में किसी शास्त्र को पढ़ के, किसी का उपदेश सुनके और मनुष्यों के परस्पर व्यवहारों को देख के ही मनुष्यों को ज्ञान होता है अन्यथा कभी नहीं होता। जैसे किसी मनुष्य के बालक को जन्म से एकान्त में रखके उसको अन्न और जल युक्ति से देवे, उसके साथ भाषणादि व्यवहार लेशमात्र भी कोई मनुष्य न करे, कि जब तक उसका मरण न हो तब तक उसको इसी प्रकार से रक्खे तो मनुष्यपने का भी ज्ञान नहीं हो सकता। तथा जैसे बड़े वन में मनुष्यों को विना उपदेश के यथार्थ ज्ञान नहीं होता, किन्तु पशुओं की नाईं उनकी प्रवृत्ति देखने में आती है, वैसे ही वेदों के उपदेश के विना भी सब मनुष्यों की प्रवृत्ति हो जाती, फिर ग्रन्थ रचने के सामर्थ्य की तो कथा क्या ही कहनी है। इससे वेदों को ईश्वर के रचित मानने से ही कल्याण है, अन्यथा नहीं।

मैवं वाच्यम्। ईश्वरेण मनुष्येभ्यः स्वाभाविकं ज्ञानं दत्तं, तच्च सर्वग्रन्थेभ्य उत्कृष्टमस्ति, नैव तेन विना वेदानां शब्दार्थसम्बन्धानामपि ज्ञानं भवितुमर्हति, तदुन्नत्या ग्रन्थरचनमपि करिष्यन्त्येव, पुनः किमर्थं मन्यते वेदोत्पादनमीश्वरेण कृतमिति। एवं प्राप्ते वदामहे। नैव पूर्वोक्तायाशिक्षितायैकान्ते रक्षिताय बालकाय महारण्यस्थेभ्यो मनुष्येभ्यश्चेश्वरेण स्वाभाविकं ज्ञानं दत्तं किम्?, कथं नास्मदादयोऽप्यन्येभ्यः शिक्षाग्रहणमन्तरेण वेदाध्ययनेन च विना पण्डिता भवन्ति? तस्मात्, किमागतम्? न शिक्षया विनाध्ययनेन च स्वाभाविकज्ञानमात्रेण कस्यापि निर्वाहो भवितुमर्हति। यथास्मदादिभिरप्यन्येषां विदुषां विद्वत्कृतानां ग्रन्थानां च सकाशादनेकविधं ज्ञानं गृहीत्वैव ग्रन्थान्तरं रच्यते, तथेश्वरज्ञानस्य सर्वेषां मनुष्याणामपेक्षावश्यं भवति। किञ्च न सृष्टेरारम्भसमये पठनपाठनक्रमो ग्रन्थश्च कश्चिदप्यासीत्तदानीमीश्वरोपदेशमन्तरा न च कस्यापि विद्यासम्भवो बभूव, पुनः कथं कश्चिज्जनो ग्रन्थं रचयेत्। मनुष्याणां नैमित्तिकज्ञाने स्वातन्त्र्याभावात्। स्वाभाविकज्ञानमात्रेणैव विद्याप्राप्त्यनुपपत्तेश्च। यच्चोक्तं स्वकीयं ज्ञानमुत्कृष्टमित्यादि तदप्यसमञ्जसम्। तस्य साधनकोटौ प्रविष्टत्वात्। चक्षुर्वत्। यथा चक्षुर्मनः साहित्येन विना ह्यकिञ्चित्करमस्ति। तथान्येषां विदुषामीश्वरज्ञानस्य च साहित्येन विना स्वाभाविकज्ञानमप्यकिञ्चित्करमेव भवतीति।

भाषार्थ

प्र०—ईश्वर ने मनुष्यों को स्वाभाविक ज्ञान दिया है सो सब ग्रन्थों से उत्तम

क्योंकि उसके विना वेदों के शब्द अर्थ और सम्बन्ध का ज्ञान कभी नहीं हो सकता और जब उस ज्ञान की क्रम से वृद्धि होगी तब मनुष्य लोग विद्या-पुस्तकों को भी रच लेंगे पुनः वेदों की उत्पत्ति ईश्वर से क्यों माननी ? । उ०—जो प्रथम दृष्टान्त बालक का एकान्त में रखने का और दूसरा वनवासियों का भी कहा था क्या उनको स्वाभाविक ज्ञान ईश्वर ने नहीं दिया है ? वे स्वाभाविक ज्ञान से विद्वान् क्यों नहीं होते ? इससे यह बात निश्चित है कि ईश्वर का किया उपदेश जो वेद है उसके विना किसी मनुष्य को यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता । जैसे हम लोग वेदों के पढ़ने, विद्वानों की शिक्षा और उनके किये ग्रन्थों को पढ़े विना पण्डित नहीं होते वैसे ही सृष्टि की आदि में भी परमात्मा जो वेदों का उपदेश नहीं करता तो आज पर्यन्त किसी मनुष्य को धर्मादि पदार्थों की यथार्थ विद्या नहीं होती। इससे क्या जाना जाता है कि विद्वानों की शिक्षा और वेद पढ़ने के विना केवल स्वाभाविक ज्ञान से किसी मनुष्य का निर्वाह नहीं हो सकता। जैसे हम लोग अन्य विद्वानों से वेदादि शास्त्रों के अनेक प्रकार के विज्ञान को ग्रहण करके ही पीछे ग्रन्थों को भी रच सकते हैं वैसे ही ईश्वर के ज्ञान की भी अपेक्षा सब मनुष्यों को अवश्य है। क्योंकि सृष्टि के आरम्भ में पढ़ने और पढ़ाने की कुछ भी व्यवस्था नहीं थी तथा विद्या का कोई ग्रन्थ भी नहीं था, उस समय ईश्वर के किये वेदोपदेश के विना विद्या के नहीं होने से कोई मनुष्य ग्रन्थ की रचना कैसे कर सकता। क्योंकि सब मनुष्यों को सहायकारी ज्ञान में स्वतन्त्रता नहीं है और स्वाभाविक ज्ञानमात्र से विद्या की प्राप्ति किसी को नहीं हो सकती। इसीसे ईश्वर ने सब मनुष्यों के हितके लिये वेदों की उत्पत्ति की है। और जो यह कहा था कि अपना ज्ञान सब वेदादि ग्रन्थों से श्रेष्ठ है सो भी अन्यथा है, क्योंकि वह स्वाभाविक जो ज्ञान है सो साधनकोटि में है। जैसे मनके संयोग के विना आंख से कुछ भी नहीं दीख पड़ता तथा आत्मा के संयोग के विना मन से भी कुछ नहीं होता, वैसे ही जो स्वाभाविक ज्ञान है सो वेद और विद्वानों की शिक्षा के ग्रहण करने में साधनमात्र ही है, तथा पशुओं के समान व्यवहार का भी साधन है, परन्तु वह स्वाभाविक ज्ञान धर्म अर्थ काम और मोक्षविद्या का साधन स्वतन्त्रता से कभी नहीं हो सकता ।

वेदोत्पादन ईश्वरस्य किं प्रयोजनमस्तीत्यत्र वक्तव्यम् ?, उच्यते । वेदानामनुत्पादने खलु तस्य किं प्रयोजनमस्तीति ? अस्योत्तरं तु वयं न जानीमः । सत्यमेवमेतत् । तावद्वेदोत्पादने यदस्ति प्रयोजनं तच्छृणुत । ईश्वरेऽनन्ता विद्यास्ति न वा ?, अस्ति । सा किमर्थास्ति ?, स्वार्था । ईश्वरः परोपकारं न करोति किम् ?,

करोति तेन किम् ?, तेनेदमस्ति विद्या स्वार्था परार्था च भवति तस्यास्तद्विषयत्वात् । यद्यस्मदर्थमीश्वरो विद्योपदेशं न कुर्यात्तदान्यतरपक्षे सा निष्फला स्यात् । तस्मादीश्वरेण स्वविद्याभूतवेदस्योपदेशेन सप्रयोजनता संपादिता । परमकारुणिको हि परमेश्वरोऽस्ति, पितृवत् । यथा पिता स्वसन्ततिं प्रति सदैव करुणां दधाति, तथेश्वरोपि परमकृपया सर्वमनुष्यार्थं वेदोपदेशमुपचक्रे । अन्यथान्धपरम्परया मनुष्याणां धर्मार्थकाममोक्षसिद्ध्या विना परमानन्द एव न स्यात् । यथा कृपायमाणेनेश्वरेण प्रजासुखार्थं कंदमूलफलतृणादिकं रचितं स कथं न सर्वसुखप्रकाशिकां सर्वविद्यामयीं वेदविद्यामुपदिशेत् ? किञ्च ब्रह्माण्डस्थोत्कृष्टसर्वपदार्थप्राप्त्या यावत्सुखं भवति न तावत् विद्याप्राप्तसुखस्य सहस्रतमेनांशेनापि तुल्यं भवत्यतो वेदोपदेश ईश्वरेण कृत एवास्तीति निश्चयः ।

भाषार्थ

प्र०—वेदों के उत्पन्न करने में ईश्वर को क्या प्रयोजन था ?, उ०—मैं तुम से पूछता हूं कि वेदों के उत्पन्न नहीं करने में उसको क्या प्रयोजन था ? जो तुम यह कहो कि इसका उत्तर हम नहीं जान सकते तो ठीक है, क्योंकि वेद तो ईश्वर की नित्य विद्या है, उस की उत्पति वा अनुत्पत्ति हो ही नहीं सकती । परन्तु हम जीव लोगों के लिये ईश्वर ने जो वेदों का प्रकाश किया है सो उसकी हम पर परमकृपा है । जो वेदोत्पत्ति का प्रयोजन है सो आप लोग सुनें । प्र०—ईश्वर में अनन्त विद्या है वा नहीं ?, उ०—है । प्र०—सो उसकी विद्या किस प्रयोजन के लिये है ? । उ०—अपने ही लिये, जिससे सब पदार्थों का रचना और जानना होता है । प्र०—अच्छा तो मैं आपसे पूछता हूं कि ईश्वर परोपकार को करता है वा नहीं ?, उ०—ईश्वर परोपकारी है, इससे क्या आया ? इससे यह बात आती है कि विद्या जो है सो स्वार्थ और परार्थ के लिये होती है, क्योंकि विद्या का यही गुण है कि स्वार्थ और परार्थ इन दोनों को सिद्ध करना । जो परमेश्वर अपनी विद्या को हम लोगों के लिये उपदेश न करे तो विद्या से जो परोपकार करना गुण है सो उसका नहीं रहे । इससे परमेश्वर ने अपनी वेदविद्या का हम लोगों के लिये उपदेश करके सफलता सिद्ध करी है, क्योंकि परमेश्वर हम लोगों का माता पिता के समान है । हम सब लोग जो उसकी प्रजा हैं उन पर नित्य कृपादृष्टि रखता है । जैसे अपने सन्तानों के ऊपर पिता और माता सदैव करुणा को धारण करते हैं कि सब प्रकार से हमारे पुत्र सुख पावें, वैसे ही ईश्वर भी सब मनुष्यादि सृष्टि पर कृपादृष्टि सदैव रखता है, इससे ही वेदों

का उपदेश हम लोगों के लिये किया है। जो परमेश्वर अपनी वेदविद्या का उपदेश मनुष्यों के लिये न करता तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि किसी को यथावत् प्राप्त न होती, उसके विना परम आनन्द भी किसी को नहीं होता। जैसे परमकृपालु ईश्वर ने प्रजा के सुख के लिये कन्द, मूल, फल और घास आदि छोटे २ भी पदार्थ रचे हैं सो ही ईश्वर सब सुखों के प्रकाश करनेवाली, सब सत्यविद्याओं से युक्त वेदविद्या का उपदेश भी प्रजा के सुख के लिये क्यों न करता। क्योंकि जितने ब्रह्माण्ड में उत्तम पदार्थ हैं उनकी प्राप्ति से जितना सुख होता है सो सुख विद्याप्राप्ति होने के सुख के हजारहवें अंश के भी समतुल्य नहीं हो सकता। ऐसा सर्वोत्तम विद्या पदार्थ जो वेद है उसका उपदेश परमेश्वर क्यों न करता। इससे निश्चय करके यह जानना कि वेद ईश्वर के ही बनाये हैं ॥

ईश्वरेण लेखनीमसीपात्रादिसाधनानि वेदपुस्तकलेखनाय कुतो लब्धानि ?। अत्रोच्यते। अहहह ! महतीयं शङ्का भवता कृता, विना हस्तपादाद्यवयवैः काष्ठलोष्ठादिसामग्रीसाधनैश्च यथेश्वरेण जगद्रचितं तथा वेदा अपि रचिताः, सर्वशक्तिमतीश्वरे वेदरचनं प्रत्येवं माशङ्कि। किन्तु पुस्तकस्था वेदा तेनादौ नोत्पादिताः। किं तर्हि ज्ञानमध्ये प्रेरिताः। केषाम् ? अग्निवाय्वादित्याङ्गिरसाम्। ते तु ज्ञानरहिता जडाः सन्ति ? मैवं वाच्यं, सृष्ट्यादौ मनुष्यदेहधारिणस्ते ह्यासन्। कुतः। जडे ज्ञानकार्यासम्भवात् यत्रार्थासम्भवोऽस्ति तत्र लक्षणा भवति। तद्यथा, कश्चिदाप्तः कञ्चित्प्रति वदति मञ्चाः क्रोशन्तीति। अत्र मञ्चस्था मनुष्याः क्रोशन्तीति विज्ञायते। तथैवात्रापि विज्ञायताम्। विद्याप्रकाशसंभवो मनुष्येष्वेव भवितुमर्हतीति। अत्र प्रमाणम्। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः॥ श० कां० ११। अ० ५। ब्रा० २। कं० ३॥ एषां ज्ञानमध्ये प्रेरयित्वा तद्द्वारा वेदाः प्रकाशिताः। सत्यमेवमेतत्। परमेश्वरेण तेभ्यो ज्ञानं दत्तं ज्ञानेन तैर्वेदानां रचनं कृतमिति विज्ञायते। मैवं विज्ञायि। ज्ञानं किं प्रकारकं दत्तम् ?, वेदप्रकारकम्। तदीश्वरस्य वा तेषाम्। ईश्वरस्यैव। पुनस्तेनैव प्रणीता वेदा आहोस्वित्तैश्च ? यस्य ज्ञानं तेनैव प्रणीताः। पुनः किमर्था शङ्का कृता तैरेव रचिता इति ?। निश्चयकरणार्था।

भाषार्थ

प्र०—वेदों के रचने और वेद पुस्तक लिखने के लिये ईश्वर ने लेखनी स्याही और दवात आदि साधन कहां से लिये ? क्योंकि उस समय में कागज़ आदि पदार्थ

ता बने ही न थे। उ०—वाह वाह जी आपने बड़ी शङ्का करी आप की बुद्धि की क्या स्तुति करें। अच्छा आपसे मैं पूछता हूं कि हाथ पग आदि अङ्गों से विना तथा काष्ठ लोह आदि सामग्री साधनों से विना ईश्वर ने जगत् को क्योंकर रचा है? जैसे हाथ आदि अवयवों से विना उसने सब जगत् को रचा है वैसे ही वेदों को भी सब साधनों के विना रचा है, क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। इससे ऐसी शङ्का उस में आप को करनी योग्य नहीं। परन्तु इसके उत्तर में इस बात को जानो कि वेदों को पुस्तकों में लिख के सृष्टि की आदि में ईश्वर ने प्रकाशित नहीं किये थे। प्र०—तो किस प्रकार से किये थे? । उ०—ज्ञान के बीच में। प्र०—किनके ज्ञान में। उ०—अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा के। प्र०—वे तो जड़ पदार्थ हैं?, उ०—ऐसा मत कहो वे सृष्टि की आदि में मनुष्यदेहधारी हुए थे, क्योंकि जड़ में ज्ञान के कार्य का असम्भव है और जहां २ असम्भव होता है वहां २ लक्षणा होती है, जैसे किसी सत्यवादी विद्वान् पुरुष ने किसी से कहा कि खेतों में मञ्चान पुकारते हैं, इस वाक्य में लक्षणा से यह अर्थ होता है कि मञ्चान के ऊपर मनुष्य पुकार रहे हैं, इसी प्रकार से यहां भी जानना कि विद्या के प्रकाश होने का सम्भव मनुष्यों में ही हो सकता है अन्यत्र नहीं। इसमें (तेभ्यः०) इत्यादि शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण लिखा है। उन चार मनुष्यों के ज्ञान के बीच में वेदों का प्रकाश करके उनसे ब्रह्मादि के बीच में वेदों का प्रकाश कराया था। प्र०-सत्य बात है कि ईश्वर ने उन को ज्ञान दिया होगा और उनने अपने ज्ञान से वेदों का रचन किया होगा? उ०—ऐसा तुमको कहना उचित नहीं, क्योंकि तुम यह भी जानते हो कि ईश्वर ने उन को ज्ञान किस प्रकार का दिया था? उ०—उन को वेदरूप ज्ञान दिया था। प्र०—अच्छा तो मैं आप से पूछता हूं कि वह ज्ञान ईश्वर का है वा उनका?, उ०—वह ज्ञान ईश्वर का ही है। प्र०-फिर आप से मैं पूछता हूं कि वेद ईश्वर के बनाये हैं वा उन के?, उ०—जिसका ज्ञान है उसी ने वेदों को बनाया। प्र०—फिर उन्हीं ने वेद रचे हैं यह शङ्का आपने क्यों की थी?, उ०—निश्चय करने और कराने के लिये ॥

ईश्वरो न्यायकार्यस्ति वा पक्षपाती?, न्यायकारी। तर्हि चतुर्णामेव हृदयेषु वेदाः प्रकाशिताः कुतो न सर्वेषामिति?, अत्राह। अत ईश्वरे पक्षपातस्य लेशोऽपि नैवागच्छति, किन्त्वनेन तस्य न्यायकारिणः परमात्मनः सम्यङ्न्यायः प्रकाशितो भवति, कुतः, न्यायेत्यस्यैव नामास्ति यो यादृशं कर्म कुर्यात्तस्मै तादृशमेव फलं

दद्यात्। अत्रैवं वेदितव्यम्। तेषामेव पूर्वपुण्यमासीद्यतः खल्वेतेषां हृदये वेदानां प्रकाशः कर्त्तुं योग्योस्ति। किं च ते तु सृष्टेः प्रागुत्पन्नास्तेषां पूर्वपुण्यं कुत आगतम्?, अत्र ब्रूमः। सर्वे जीवाः स्वरूपतोऽनादयः,स्तेषां कर्म्माणि, सर्वं कार्य्यं जगच्च, प्रवाहेणैवानादीनि सन्तीति। एतेषामनादित्वस्य प्रमाणपूर्वकं प्रतिपादनमग्रे करिष्यते।

भाषार्थ

प्र०—ईश्वर न्यायकारी है वा पक्षपाती?, उ०—न्यायकारी। प्र०—जब परमेश्वर न्यायकारी है तो सब के हृदयों में वेदों का प्रकाश क्यों नहीं किया? क्योंकि चारों के हृदयों में प्रकाश करने से ईश्वर में पक्षपात आता है। उ०—इससे ईश्वर में पक्षपात का लेश कदापि नहीं आता, किन्तु उस न्यायकारी परमात्मा का साक्षात् न्याय ही प्रकाशित होता है, क्योंकि न्याय उसको कहते हैं कि जो जैसा कर्म करे उस को वैसा ही फल दिया जाय। अब जानना चाहिये कि उन्हीं चार पुरुषों का ऐसा पूर्वपुण्य था कि उनके हृदय में वेदों का प्रकाश किया गया। प्र०—वे चार पुरुष तो सृष्टि की आदि में उत्पन्न हुए थे उन का पूर्वपुण्य कहां से आया?, उ०—जीव, जीवों के कर्म और स्थूल कार्य्य जगत् ये तीनों अनादि हैं, जीव और कारण जगत्स्वरूप से अनादि हैं, कर्म और स्थूल कार्य्य जगत् प्रवाह से अनादि हैं। इसकी व्याख्या प्रमाणपूर्वक आगे लिखी जायगी।

किं गायत्र्यादिच्छन्दोरचनमपीश्वरेणैव कृतं?, इयं कुतः शङ्काभूत्?, किमीश्वरस्य गायत्र्यादिच्छन्दोरचनज्ञानं नास्ति?, अस्त्येव तस्य सर्वविद्यावत्त्वात्। अतो निर्मूला सा शङ्कास्ति। चतुर्मुखेण ब्रह्मणा वेदा निरमायिषतेत्यैतिह्यम्। मैवं वाच्यम्। ऐतिह्यस्य शब्दप्रमाणान्तर्भावात्। आप्तोपदेशः शब्दः॥ न्यायशास्त्रे अ० १। सू० ७ इति गोतमाचार्य्येणोक्तत्वात्। शब्द ऐतिह्यमित्यादि च॥ न्याय अ० २। आह्नि० २। सू० २॥ अस्यैवोपरि॥ न्याय अ० १। आह्नि० १। सू० ७॥ आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा, यथा दृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयुक्त उपदेष्टा, साक्षात्करणमर्थस्याप्तिस्तया प्रवर्त्तत इत्याप्त, इति न्यायभाष्ये वात्स्यायनोक्तेः। अतः सत्यस्यैवैतिह्यत्वेन ग्रहणं नानृतस्य। यत्सत्यप्रमाणमाप्तोपदिष्टमैतिह्यं तद् ग्राह्यं, नातो विपरीतमिति, अनृतस्य प्रमत्तगीतत्वात्। एवमेव व्यासेनर्षिभिश्च वेदा रचिता इत्याद्यपि मिथ्यैवास्तीति मन्यताम्। नवीनपुराणग्रन्थानां तन्त्रग्रन्थानां च वैयर्थापत्तेश्चेति।

भाषार्थ

प्र०—क्या गायत्र्यादि छन्दों का भी रचन ईश्वर ने ही किया है ?, उ०—यह शङ्का आप को कहां से हुई ?, प्र०—मैं तुम से पूछता हूं क्या गायत्र्यादि छन्दों के रचने का ज्ञान ईश्वर को नहीं है ?, उ०—ईश्वर को सब ज्ञान है। अच्छा तो ईश्वर के समस्त विद्यायुक्त होने से आप की यह शङ्का भी निर्मूल है। प्र०—चार मुख के ब्रह्माजी ने वेदों को रचा ऐसे इतिहास को हम लोग सुनते हैं ?, उ०—ऐसा मत कहो, क्योंकि इतिहास को शब्दप्रमाण के भीतर गिना है (आप्तो०) अर्थात् सत्यवादी विद्वानों का जो उपदेश है उसको शब्दप्रमाण में गिनते हैं, ऐसा न्यायदर्शन में गोतमाचार्य ने लिखा है, तथा शब्दप्रमाण से जो युक्त है वही इतिहास मानने के योग्य है अन्य नहीं। इस सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनि ने आप्त का लक्षण कहा है जो कि साक्षात् सब पदार्थविद्याओं का जाननेवाला, कपट आदि दोषों से रहित धर्मात्मा है, कि जो सदा सत्यवादी, सत्यमानी और सत्यकारी है, जिसको पूर्ण विद्या से आत्मा में जिस प्रकार का ज्ञान है उसके कहने की इच्छा की प्रेरणा से सब मनुष्यों पर कृपादृष्टि से सब सुख होने के लिये सत्य उपदेश का करने वाला है, और जो पृथ्वी से ले के परमेश्वर पर्यन्त सब पदार्थों को यथावत् साक्षात् करना और उसी के अनुसार वर्त्तना इसी का नाम आप्ति है, इस आप्ति से जो युक्त हो उसको आप्त कहते हैं। उसी के उपदेश का प्रमाण होता है, इससे विपरीत मनुष्य का नहीं, क्योंकि सत्य वृत्तान्त का ही नाम इतिहास है, अनृत का नहीं। सत्यप्रमाणयुक्त जो इतिहास है वही सब मनुष्यों को ग्रहण करने के योग्य है इससे विपरीत इतिहास का ग्रहण करना किसी को योग्य नहीं, क्योंकि प्रमादी पुरुष के मिथ्या कहने का इतिहास में ग्रहण ही नहीं होता। इसी प्रकार व्यासजी ने चारों वेदों की संहिताओं का संग्रह किया है इत्यादि इतिहासों को भी मिथ्या ही जानना चाहिये। जो आजकल के बने ब्रह्मवैवर्त्तादि पुराण और ब्रह्मयामल आदि तन्त्रग्रन्थ हैं इन में कहे इतिहासों का प्रमाण करना किसी मनुष्य को योग्य नहीं, क्योंकि इनमें असम्भव और अप्रमाण कपोलकल्पित मिथ्या इतिहास बहुत लिख रक्खे हैं और जो सत्यग्रन्थ शतपथ ब्राह्मणादि हैं उनके इतिहासों का कभी त्याग नहीं करना चाहिये।

यो मन्त्रसूक्तानामृषिर्लिखितस्तेनैव तद्रचितमिति कुतो न स्यात् ? मैवं वादि। ब्रह्मादिभिरपि वेदानामध्ययनश्रवणयोः कृतत्वात्। यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं

यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै०, इति श्वेताश्वतरोपनिषदादिवचनस्य (अ०६। श्लो० १८) विद्यमानत्वात्। एवं यदर्षीणामुत्पत्तिरपि नासीत्तदा ब्रह्मादीनां समीपे वेदानां वर्त्तमानत्वात्। तद्यथा। अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥ १ ॥ अ० १ । श्लो० २३ ॥ अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः॥ अ० २ । श्लो० १५१ ॥ इति मनुसाक्ष्यत्वात्। अग्न्यादीनां सकाशाद् ब्रह्मापि वेदानामध्ययनं चक्रेऽन्येषां व्यासादीनां तु का कथा।

भाषार्थ

प्र०—जो सूक्त और मन्त्रों के ऋषि लिखे जाते हैं उन्होंने ही वेद रचे हों ऐसा क्यों नहीं माना जाय ?। उ०—ऐसा मत कहो। क्योंकि ब्रह्मादि ने भी वेदों को पढ़ा है। सो श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में यह वचन है कि जिसने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्मादि की सृष्टि की आदि में अग्नि आदि के द्वारा वेदों का भी उपदेश किया है उसी परमेश्वर के शरण को हम लोग प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार ऋषियों ने भी वेदों को पढ़ा है। क्योंकि जब मरीच्यादि ऋषि और व्यासादि मुनियों का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय में भी ब्रह्मादि के समीप वेदों का वर्त्तमान था। इस में मनु के श्लोकों की भी साक्षी है कि पूर्वोक्त अग्नि वायु रवि और अङ्गिरा से ब्रह्माजी ने वेदों को पढ़ा था। जब ब्रह्माजी ने वेदों को पढ़ा था तो व्यासादि और हम लोगों की तो कथा क्या ही कहनी है।

कथं वेदः श्रुतिश्च द्वे नाम्नी ऋक्संहितादीनां जाते इति ? अर्थवशात्। (विद) ज्ञाने, (विद) सत्तायाम्, (विदॢ) लाभे, (विद) विचारणे, एतेभ्यो हलश्चेति सूत्रेण करणाधिकरणकारकयोर्घञ्प्रत्यये कृते वेदशब्दः साध्यते। तथा (श्रु) श्रवणे, इत्यस्माद्धातोः करणकारके क्तिन्प्रत्यये कृते श्रुतिशब्दो व्युत्पद्यते। विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते, विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्या यैर्येषु वा, तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः। तथाऽऽदिसृष्टिमारभ्याद्यपर्यन्तं ब्रह्मादिभिः सर्वाः सत्यविद्याः श्रूयन्तेऽनया सा श्रुतिः। न कस्यचिद्देहधारिणः सकाशात्कदाचित्कोपि वेदानां रचनं दृष्टवान्। कुतः। निरवयवेश्वरात्तेषां प्रादुर्भावात्। अग्निवाय्वादित्याङ्गिरसस्तु निमित्तीभूता वेदप्रकाशार्थमीश्वरेण कृता इति विज्ञेयम्। तेषां ज्ञानेन वेदानामनुत्पत्तेः। वेदेषु शब्दार्थ-

सम्बन्धाः परमेश्वरादेव प्रादुर्भूताः तस्य पूर्णविद्यावत्त्वात् । अतः किं सिद्धमग्निवायुरव्यङ्गिरोमनुष्यदेहधारिजीवद्वारेण परमेश्वरेण श्रुतिर्वेदः प्रकाशीकृत इति बोध्यम् ।

भाषार्थ

प्र०—वेद और श्रुति ये दो नाम ऋग्वेदादि संहिताओं के क्यों हुए हैं ?, उ०—अर्थभेद से । क्योंकि एक (विद) धातु ज्ञानार्थ है, दूसरा (विद) सत्तार्थ है, तीसरे (विद्लृ) का लाभ अर्थ है, चौथे (विद) का अर्थ विचार है । इन चार धातुओं से करण और अधिकरणकारक में घञ् प्रत्यय करने से वेद-शब्द सिद्ध होता है । तथा (श्रु) धातु श्रवण अर्थ में है, इससे करणकारक में क्तिन् प्रत्यय के होने से श्रुति शब्द सिद्ध होता है । जिनके पढ़ने से यथार्थ विद्या का विज्ञान होता है, जिन को पढ़ के विद्वान् होते हैं, जिन से सब सुखों का लाभ होता है और जिनसे ठीक २ सत्यासत्य का विचार मनुष्यों को होता है, इससे ऋक्संहितादि का वेद नाम है । वैसे ही सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त और ब्रह्मादि से लेके हम लोग पर्यन्त जिससे सब सत्य विद्याओं को सुनते आते हैं इससे वेदों का श्रुति नाम पड़ा है । क्योंकि किसी देहधारी ने वेदों के बनाने वाले को साक्षात् कभी नहीं देखा, इस कारण से जाना गया कि वेद निराकार ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं और उनको सुनते सुनाते ही आज पर्यन्त सब लोग चले आते हैं । तथा अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा इन चारों मनुष्यों को, जैसे वादित्र को कोई बजावे वा काठ की पुतली को चेष्टा करावे, इसी प्रकार ईश्वर ने उनको निमित्तमात्र किया था। क्योंकि उनके ज्ञान से वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई । किन्तु इससे यह जाना कि वेदों में जितने शब्द अर्थ और सम्बन्ध हैं वे सब ईश्वर ने अपने ही ज्ञान से उनके द्वारा प्रकट किये हैं ।

वेदानामुत्पत्तौ कियन्ति वर्षाणि व्यतीतानि ? । अत्रोच्यते एको । वृन्दः, षण्णवतिः कोटयो,ऽष्टौ लक्षाणि, द्विपञ्चाशत्सहस्राणि, नवशतानि, षट्सप्ततिश्चैतावन्ति (१९६०८५२९७६) वर्षाणि व्यतीतानि, सप्तसप्ततितमोयं संवत्सरो वर्त्तत इति वेदितव्यम् । एतावन्त्येव वर्षाणि वर्त्तमानकल्पसृष्टेश्चेति । कथं विज्ञायते ह्येतावन्त्येव वर्षाणि व्यतीतानीति ? । अत्राह,ास्यां वर्त्तमानायां सृष्टौ वैवस्वतस्य सप्तमस्यास्य मन्वन्तरस्येदानीं वर्त्तमानत्वादस्मात्पूर्वं षण्णां मन्वन्तराणां व्य-

तीतत्वाच्चेति । तद्यथा—स्वायम्भवः, स्वारोचिष, औत्तमि,स्तामसो, रैवत,श्चाक्षुषो, वैवस्वतश्चेति सप्तैते मनवस्तथा सावर्ण्यादय आगामिनः सप्त चैते मिलित्वा (१४) चतुर्दशैव भवन्ति । तत्रैकसप्ततिश्चातुर्युगानि ह्येकैकस्य मनोः परिमाणं भवति । ते चैकस्मिन्ब्राह्मदिने (१४) चतुर्दशभुक्तभोगा भवन्ति । एकसहस्रं (१०००) चातुर्युगानि ब्राह्मदिनस्य परिमाणं भवति । ब्राह्म्या रात्रेरपि तावदेव परिमाणं विज्ञेयम् । सृष्टेर्वर्त्तमानस्य दिनसंज्ञास्ति, प्रलयस्य च रात्रिसंज्ञेति । अस्मिन्ब्राह्मदिने षट् मनवस्तु व्यतीताः, सप्तमस्य वैवस्वतस्य वर्त्तमानस्य मनोरष्टाविंशतितमोयं कलिर्वर्त्तते । तत्रास्य वर्त्तमानस्य कलियुगस्यैतावन्ति (४६७६) चत्वारिसहस्राणि, नवशतानि, षट्सप्ततिश्च वर्षाणि तु गतानि, सप्तसप्ततितमोयं संवत्सरो वर्त्तते । यमार्या विक्रमस्यैकोनविंशतिशतं त्रयस्त्रिंशत्तमोत्तरं संवत्सरं वदन्ति ।

अत्र विषये प्रमा

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः । एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥ १ ॥ चत्वार्य्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् । तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ २ ॥ इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु । एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ३ ॥ यदेतत् परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् । एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यत ॥ ४ ॥ दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया । ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च ॥ ५ ॥ तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः । रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ ६ ॥ यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् । तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥७॥ मन्वन्तराण्यसंख्यानि सृष्टिः संहार एव च । क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ॥ ८॥ मनु० अध्याये १ । श्लो० ६८-७३, ७६, ८० ॥

कालस्य परिमाणार्थं ब्राह्माहोरात्रादयः सुगमबोधार्थाः संज्ञाः क्रियन्ते । यतः सहजतया जगदुत्पत्तिप्रलययोर्वर्षाणां वेदोत्पत्तेश्च परिगणनं भवेत् । मन्वन्तरपर्य्यावृत्तौ सृष्टेर्नैमित्तिकगुणानामपि पर्य्यावर्त्तनं किञ्चित् किंचिद्भवत्यतो मन्वन्तरसंज्ञा क्रियते । अत्रैवं संख्यातव्यम् । एकं दशशतं चैव सहस्रमयुतं तथा । लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥ १ ॥ वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शङ्खः पद्मं च सागरः । अन्त्यं मध्यं परार्द्ध्यं च दशवृद्ध्या यथाक्रमम् ॥ २ ॥ इति सूर्यसिद्धान्तादिषु

संख्यायते । अनया रीत्या वर्षादिगणना कार्येति ॥ सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि ॥ य० अ० १५ । मं० ६५ ॥ सर्वं वै सहस्रं सर्वस्य दातासि ॥ श० कां० ७ । अ० ५ । ब्रा० २ । कण्डिका १३ ॥ सर्वस्य जगतः सर्वमिति नामास्ति । कालस्य चानेन सहस्रमहायुगसंख्यया परिमितस्य दिनस्य नक्तस्य च ब्रह्माण्डस्य प्रमा परिमाणस्य कर्त्ता परमेश्वरोस्ति, मन्त्रस्यास्य सामान्यार्थे वर्त्तमानत्वात्सर्वमभिवदतीति । एवमेवाग्रेपि योजनीयम् । ज्योतिषशास्त्रे प्रतिदिनचर्याऽभिहिताऽऽर्य्यैः क्षणमारभ्य कल्पकल्पान्तस्य गणितविद्यया स्पष्टं परिगणनं कृतमद्यपर्यन्तमपि क्रियते प्रतिदिनमुच्चार्य्यते ज्ञायते चातः कारणादियं व्यवस्थैव सर्वमनुष्यैः स्वीकर्तुं योग्यास्ति नान्येति निश्चयः । कुतो ह्यार्य्यैर्नित्यमोंतत सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणेऽमुकसंवत्सरायनर्तुमासपक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्तेऽत्रेदं कृतं क्रियते चेत्याबालवृद्धैः प्रत्यहं विदितत्वादितिहासस्यास्य सर्वत्रार्य्यावर्त्तदेशे वर्त्तमानत्वात्सर्वत्रैकरसत्वादशक्येयं व्यवस्था केनापि विचालयितुमिति विज्ञायताम् । अन्यद्युगव्याख्यानमग्रे करिष्यते तत्र द्रष्टव्यम् ।

भाषार्थ

प्रश्न—वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष होगये हैं ?, **उत्तर**—एक वृन्द, छानवे करोड़, आठ लाख, बावन हज़ार, नवसौ, छहत्तर अर्थात् (१९६०८५२९७६) वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में हो गये हैं और यह संवत् सतहत्तरवां (७७) वर्त्त रहा है । प्र०—यह कैसे निश्चय हो कि इतने ही वर्ष वेद और जगत् की उत्पत्ति में बीत गये हैं ? । उ०--यह जो वर्त्तमान सृष्टि है इसमें सातवें (७) वैवस्वतमनु का वर्त्तमान है, इससे पूर्व छः मन्वन्तर हो चुके हैं । स्वायम्भव १, स्वारोचिष २, औत्तमि ३, तामस ४, रैवत ५, चाक्षुष ६, ये छः तो बीतगये हैं और ७ (सातवां) वैवस्वत वर्त्त रहा है, और सावर्णि आदि ७ (सात) मन्वन्तर आगे भोगेंगे । ये सब मिलके १४ मन्वन्तर होते हैं । और एकहत्तर चतुर्युगियों का नाम मन्वन्तर धरा गया है । सो उसकी गणना इस प्रकार से है कि (१७२८०००) सत्रह लाख, अट्ठाईस हज़ार वर्षों का नाम सतयुग रक्खा है । (१२९६०००) बारह लाख, छानवे हज़ार वर्षों का नाम त्रेता । (८६४०००) आठ लाख, चौंसठ हज़ार वर्षों का नाम द्वापर और (४३२०००) चार लाख, बत्तीस हज़ार वर्षों का नाम कलियुग रक्खा है ।

तथा आर्य्यों ने एक क्षण और निमेष से लेके एक वर्ष पर्यन्त भी काल की सूक्ष्म और स्थूल संज्ञा बांधी है। और इन चारों युगों के (४३२००००) तितालीस लाख, बीस हज़ार वर्ष होते हैं जिनका चतुर्युगी नाम है। एकहत्तर (७१) चतुर्युगियों के अर्थात् (३०६७२००००) तीस करोड़, सरसठ लाख, बीस हज़ार वर्षों की एक मन्वन्तर संज्ञा की है और ऐसे २ छः मन्वन्तर मिल कर अर्थात् (१८४०३२००००) एक अर्ब, चौरासी करोड़, तीन लाख, बीस हज़ार वर्ष हुए और सातवें मन्वन्तर के भोग में यह (२८) अट्ठाईसवीं चतुर्युगी है। इस चतुर्युगी में कलियुग के (४९७६) चार हज़ार, नवसौ, छहत्तर वर्षों का तो भोग हो चुका है और बाक़ी (४२७०२४) चार लाख, सत्ताईस हज़ार, चौबीस वर्षों का भोग होनेवाला है। जानना चाहिये कि (१२०५३२९७६) बारह करोड़, पांच लाख, बत्तीस हज़ार, नवसौ, छहत्तर वर्ष तो वैवस्वतमनु के भोग हो चुके हैं और (१८६१८७०२४) अठारह करोड़, एकसठ लाख, सत्तासी हज़ार, चौबीस वर्ष भोगने के बाक़ी रहे हैं। इन में से यह वर्त्तमान वर्ष (७७) सतहत्तरवां है, जिस को आर्य्य लोग विक्रम का (१९३३) उन्नीससौ तेतीसवां संवत् कहते हैं। जो पूर्व चतुर्युगी लिख आये हैं उन एक हज़ार चतुर्युगियों की ब्राह्मदिन संज्ञा रक्खी है और उतनी ही चतुर्युगियों की रात्रि संज्ञा जानना चाहिये। सो सृष्टि की उत्पत्ति करके हज़ार चतुर्युगी पर्यन्त ईश्वर इस को बना रखता है इसी का नाम ब्राह्मदिन रक्खा है और हज़ार चतुर्युगी पर्यन्त सृष्टि को मिटा के प्रलय अर्थात् कारण में लीन रखता है उसका नाम ब्राह्मरात्रि रक्खा है। अर्थात् सृष्टि के वर्त्तमान होने का नाम दिन और प्रलय होने का नाम रात्रि है। यह जो वर्त्तमान ब्राह्मदिन है इसके (१९६०८५२९७६) एक अर्ब, छानवे करोड़, आठ लाख, बावन हज़ार, नवसौ, छहत्तर वर्ष इस सृष्टि की तथा वेदों की उत्पत्ति में भी व्यतीत हुए हैं और (२३३३२२७०२४) दो अर्ब, तेतीस करोड़, बत्तीस लाख, सत्ताईस हज़ार, चौबीस वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाक़ी रहे हैं। इनमें से अन्त का यह चौबीसवां वर्ष भोग रहा है। आगे आनेवाले भोग के वर्षों में से एक २ घटाते जाना और गत वर्षों में क्रम से एक २ वर्ष मिलाते जाना चाहिये, जैसे आजपर्य्यन्त घटाते बढ़ाते आये हैं। ब्राह्मदिन और ब्राह्मरात्रि अर्थात् ब्रह्म जो परमेश्वर उसने संसार के वर्त्तमान और प्रलय की संज्ञा की है इसीलिये इसका नाम ब्राह्मदिन है। इसी प्रकरण में मनुस्मृति के श्लोक साक्षी के लिये लिख चुके

हैं सो देख लेना । इन श्लोकों में दैववर्षों की गणना की है अर्थात् चारों युगों के बारह हज़ार (१२०००) वर्षों की दैवयुग संज्ञा की है । इसी प्रकार असंख्यात मन्वन्तरों में कि जिनकी संख्या नहीं हो सकती अनेक वार सृष्टि हो चुकी है और अनेक वार होगी । सो इस सृष्टि को सदा से सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर सहज स्वभाव से रचता, पालन और प्रलय करता है और सदा ऐसे ही करेगा । क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति, वर्तमान, प्रलय और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों को मनुष्य लोग सुख से गिन लें इसीलिये यह ब्राह्मदिन आदि संज्ञा बांधी है । और सृष्टि का स्वभाव नया पुराना प्रतिमन्वन्तर में बदलता जाता है, इसीलिये मन्वन्तर संज्ञा बांधी है । वर्त्तमान सृष्टि की कल्पसंज्ञा और प्रलय की विकल्पसंज्ञा की है । और इन वर्षों की गणना इस प्रकार से करना चाहिये कि (एकं दशशतं चैव) एक (१), दश (१०), शत (१००), हज़ार (१०००), दशहज़ार (१००००), लाख (१०००००), नियुत (१००००००), करोड़ (१०००००००), अर्बुद (१००००००००), वृन्द (१००००००००००), खर्व (१००००००००००), निखर्व (१००००००००००००), शंख (१०००००००००००००), पद्म (१००-०००००००००००), सागर (१००००००००००००००), अन्त्य (१०००-००००००००००००), मध्य (१००००००००००००००००) और परार्द्धर्य १०००००००००००००००००), और दश २ गुणा बढ़ाकर इसी गणित से सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिष्ग्रन्थों में गिनती की है* । (सहस्रस्यप्र०) सब संसार की सहस्र संज्ञा है तथा पूर्वोक्त ब्राह्मदिन और रात्रि की भी सहस्रसंज्ञा लीजाती है, क्योंकि यह मन्त्र सामान्य अर्थ में वर्त्तमान है । सो हे परमेश्वर ! आप इस हज़ार चतुर्युगी का दिन और रात्रि को प्रमाण अर्थात् निर्माण करने वाले हो । इस प्रकार ज्योतिष्शास्त्र में यथावत् वर्षों की संख्या आर्य लोगों ने गिनी है । सो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके आज पर्यन्त दिन २ गिनते और क्षण से लेके कल्पान्त की गणितविद्या को प्रसिद्ध करते चले आते हैं अर्थात् परम्परा से सुनते सुनाते लिखते लिखाते और पढ़ते पढ़ाते आज पर्यन्त हम लोग चले आते हैं । यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की ठीक है और सब मनुष्यों को इसी को ग्रहण करना योग्य है । क्योंकि आर्य्य लोग नित्यप्रति "ओं तत्सत्" परमेश्वर

* कहीं २ इसी संख्या को १९ (उन्नीस) अङ्क पर्यन्त गिनते हैं सो यहां भी जान लेना ।

के इन तीन नामों का प्रथम उच्चारण करके कार्यों का आरम्भ और परमेश्वर का ही नित्य धन्यवाद करते चले आते हैं कि आनन्द में आज पर्यन्त परमेश्वर की सृष्टि और हम लोग बने हुए हैं, और बही खाते की नाईं लिखते लिखाते पढ़ते पढ़ाते चले आये हैं कि पूर्वोक्त ब्राह्मदिन के दूसरे प्रहर के ऊपर मध्याह्न के निकट दिन आया है और जितने वर्ष वैवस्वतमनु के भोग होने को बाकी हैं उतने ही मध्याह्न में बाक़ी रहे हैं, इसीलिये यह लेख है (श्री ब्राह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे०)। यह वैवस्वतमनु का वर्त्तमान है, इस के भोग में यह (२८) अट्ठाईसवां कलियुग है। कलियुग के प्रथम चरण का भोग हो रहा है तथा वर्ष ऋतु अयन मास पक्ष दिन नक्षत्र मुहूर्त लग्न और पल आदि समय में हमने फलाना काम किया था और करते हैं अर्थात् जैसे विक्रम के संवत् १९३३ फाल्गुन मास, कृष्णपक्ष, षष्ठी, शनिवार के दिन, चतुर्थ प्रहर के आरम्भ में यह बात हम ने लिखी है। इसी प्रकार से सब व्यवहार आर्य लोग बालक से वृद्ध पर्य्यन्त करते और जानते चले आये हैं। जैसे बही खाते में मिती डालते हैं वैसे ही महीना और वर्ष बढ़ाते घटाते चले जाते हैं। इसी प्रकार आर्य्य लोग तिथिपत्र में भी वर्ष, मास और दिन आदि लिखते चले आते हैं, और यही इतिहास आज पर्य्यन्त सब आर्य्यावर्त्त देश में एकसा वर्त्तमान हो रहा है और सब पुस्तकों में भी इस विषय में एक ही प्रकार का लेख पाया जाता है, किसी प्रकार का इस विषय में विरोध नहीं है। इसीलिये इसको अन्यथा करने में किसी का सामर्थ्य नहीं हो सकता। क्योंकि जो सृष्टि की उत्पत्ति से ले के बराबर मितीवार लिखते न आते तो इस गिनती का हिसाब ठीक २ आर्य्य लोगों को भी जानना कठिन होता, अन्य मनुष्यों का तो क्या ही कहना है। और इससे यह भी सिद्ध होता है कि सृष्टि के आरम्भ से ले के आज पर्यन्त आर्य्य लोग ही बड़े २ विद्वान् और सभ्य होते चले आये हैं। जब जैन और मुसलमान आदि लोग इस देश के इतिहास और विद्यापुस्तकों का नाश करने लगे तब आर्य्य लोगों ने सृष्टि के गणित का इतिहास कण्ठस्थ कर लिया और जो पुस्तक ज्योतिषशास्त्र के बच गये हैं उन में और उनके अनुसार जो वार्षिक पञ्चाङ्गपत्र बनते जाते हैं इन में भी मिती से मिती बराबर लिखी चली आती है, इसको अन्यथा कोई नहीं कर सकता। यह वृत्तान्त इतिहास का इसलिये है कि पूर्वापर काल का प्रमाण यथावत् सब को विदित रहे और सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय तथा वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की

गिनती में किसी प्रकार का भ्रम किसी को न हो । सो यह बड़ा उत्तम काम है । इस को सब लोग यथावत् जान लेवें । परन्तु इस उत्तम व्यवहार को लोगों ने टका कमाने के लिये बिगाड़ रक्खा है । यह शोक की बात है । और टके के लोभ ने भी जो इस के पुस्तकव्यवहार को बना रक्खा नष्ट न होने दिया यह बड़े हर्ष की बात है । चारों युगों के चार भेद और उनके वर्षों की घट बढ़ संख्या क्यों हुई है इसकी व्याख्या आगे करेंगे वहां देख लेना चाहिये, यहां इस का प्रसंग नहीं है इसलिये नहीं लिखा।

एतावता कथनेनैवाध्यापकैर्विलसनमोक्षमूलराद्यभिधैर्यूरोपाख्यखण्डस्थैर्मनुष्यरचितो वेदोस्ति श्रुतिर्नास्तीति यदुक्तं, यच्चोक्तं चतुर्विंशतिरेकोनात्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च शतानि वर्षाणि वेदोत्पत्तौ व्यतीतानीति तत्सर्वं भ्रममूलमस्तीति वेद्यम् । तथैव प्राकृतभाषया व्याख्यानकारिभिरप्येवमुक्तं तदपि भ्रान्तमेवास्तीति च ।

इति वेदोत्पत्तिविचारः

भाषार्थ

इससे जो अध्यापक विलसन साहब और अध्यापक मोक्षमूलर साहब आदि यूरोपखण्डवासी विद्वानों ने बात कही है कि वेद मनुष्य के रचे हैं किन्तु श्रुति नहीं है, उनकी यह बात ठीक नहीं है । और दूसरी यह है—कोई कहता है (२४००) चौबीस सौ वर्ष वेदों की उत्पत्ति को हुए, कोई (२९००) उनतीस सौ वर्ष, कोई (३०००) तीन हज़ार वर्ष और कोई कहता है (३१००) एकतीस सौ वर्ष वेदों को उत्पन्न हुए बीते हैं, इनकी यह भी बात झूठी है । क्योंकि उन लोगों ने हम आर्य्य लोगों की नित्यप्रति की दिनचर्या का लेख और संकल्पपठनविद्या को भी यथावत् न सुना और न विचारा है, नहीं तो इतने ही विचार से यह भ्रम उन को नहीं होता । इससे यह जानना अवश्य चाहिये कि वेदों की उत्पत्ति परमेश्वर से ही हुई है और जितने वर्ष अभी ऊपर गिन आये हैं उतने ही वर्ष वेदों और जगत् की उत्पत्ति में भी हो चुके हैं । इससे क्या सिद्ध हुआ कि जिन २ ने अपनी २ देशभाषाओं में अन्यथा व्याख्यान वेदों के विषय में किया है उन २ का भी व्याख्यान मिथ्या है । क्योंकि जैसा प्रथम लिख आये हैं जब पर्यन्त हज़ार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी तब पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक, यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्त्तमान रहेंगे ।

इति वेदोत्पत्तिविचारः

अथ वेदानां नित्यत्वविचारः

ईश्वरस्य सकाशाद्वेदानामुत्पत्तौ सत्यां स्वतो नित्यत्वमेव भवति, तस्य सर्वसामर्थ्यस्य नित्यत्वात् ।

भाषार्थ

अब वेदों के नित्यत्व का विचार किया जाता है, सो वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं इससे वे स्वतः नित्यस्वरूप ही हैं, क्योंकि ईश्वर का सब सामर्थ्य नित्य ही है ।

अत्र केचिदाहुः । न वेदानां शब्दमयत्वान्नित्यत्वं सम्भवति । शब्दोऽनित्यः कार्य्यत्वात् । घटवत् । यथा घटः कृतोस्ति तथा शब्दोपि । तस्माच्छब्दानित्यत्वे वेदानामप्यनित्यत्वं स्वीकार्य्यम् । मैवं मन्यताम् । शब्दो द्विविधो नित्यकार्यभेदात् । ये परमात्मज्ञानस्थाः शब्दार्थसम्बन्धाः सन्ति ते नित्या भवितुमर्हन्ति । येऽस्मदादीनां वर्त्तन्ते ते तु कार्य्याश्च । कुतः । यस्य ज्ञानक्रिये नित्ये स्वभावसिद्धे अनादीस्तस्तस्य सर्वं सामर्थ्यमपि नित्यमेव भवितुमर्हति । तद्विद्यामयत्वाद्वेदानामनित्यत्वं नैव घटते ॥

भाषार्थ

प्र०-इस विषय में कितने ही पुरुष ऐसी शङ्का करते हैं कि वेदों में शब्द, छन्द, पद और वाक्यों के योग होने से नित्य नहीं हो सकते । जैसे विना बनाने से घड़ा नहीं बनता इसी प्रकार से वेदों को भी किसी ने बनाया होगा । क्योंकि बनाने के पहिले नहीं थे और प्रलय के अन्त में भी न रहेंगे, इससे वेदों को नित्य मानना ठीक नहीं है ? । उ०—ऐसा आपको कहना उचित नहीं, क्योंकि शब्द दो प्रकार का होता है एक नित्य और दूसरा कार्य । इनमें से जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध परमेश्वर के ज्ञान में हैं वे सब नित्य ही होते हैं, और जो हम लोगों की कल्पना से उत्पन्न होते हैं वे कार्य्य होते हैं । क्योंकि जिसका ज्ञान और क्रिया स्वभाव से सिद्ध और अनादि है उसका सब सामर्थ्य भी नित्य ही होता है, इससे वेद भी उसकी विद्यास्वरूप होने से नित्य ही हैं, क्योंकि ईश्वर की विद्या अनित्य कभी नहीं हो सकती ।

किं च भोः सर्वस्यास्य जगतो विभागं प्राप्तस्य कारणरूपस्थितौ सर्वस्थूलकार्य्याभावे पठनपाठनपुस्तकानामभावात्कथं वेदानां नित्यत्वं स्वीक्रियते ?, अत्रोच्यते । इदं तु पुस्तकपत्रमसीपदार्थादिषु घटते, तथास्मत् क्रियापक्षे च, नेतरस्मिन् । अतः कारणादीश्वरविद्यामयत्वेन वेदानां नित्यत्वं वयं मन्यामहे । किं च न पठनपाठनपुस्तकानित्यत्वे वेदानित्यत्वं जायते । तेषामीश्वरज्ञानेन सह सदैव विद्यमानत्वात् । यथास्मिन्कल्पे वेदेषु शब्दाक्षरार्थसंबंधाः सन्ति तथैव पूर्वमासन्नग्रे भविष्यन्ति च । कुतः । ईश्वरविद्याया नित्यत्वादव्यभिचारित्वाच्च । अतएवेदमुक्तमृग्वेदे । सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयदिति * । अस्यायमर्थः । सूर्यचन्द्रग्रहणमुपलक्षणार्थं, यथा पूर्वकल्पे सूर्यचन्द्रादिरचनं तस्य ज्ञानमध्ये ह्यासीत्तथैव तेनास्मिन्कल्पेपि रचनं कृतमस्तीति विज्ञायते । कुतः । ईश्वरज्ञानस्य वृद्धिक्षयविपर्ययाभावात् । एवं वेदेष्वपि स्वीकार्य्यं, वेदानां तेनैव स्वविद्यातः सृष्टत्वात् ।

भाषार्थ

प्र०—जब सब जगत् के परमाणु अलग २ हो के कारणरूप हो जाते हैं तब जो कार्यरूप सब स्थूल जगत् है उसका अभाव होजाता है, उस समय वेदों के पुस्तकों का भी अभाव होजाता है, फिर वेदों को नित्य क्यों मानते हो ?, उ० —यह बात पुस्तक, पत्र, मसी और अक्षरों की बनावट आदि पक्ष में घटती है, तथा हम लोगों के क्रियापक्ष में भी बन सकती है, वेदपक्ष में नहीं घटती । क्योंकि वेद तो शब्द, अर्थ और सम्बन्धस्वरूप ही हैं, मसी काग़ज़ पत्र पुस्तक और अक्षरों की बनावटरूप नहीं हैं । यह जो मसीलेखनादि क्रिया है सो मनुष्यों की बनाई है, इससे यह अनित्य है, और ईश्वर के ज्ञान में सदा बने रहने से वेदों को हम लोग नित्य मानते हैं । इससे क्या सिद्ध हुआ कि पढ़ना पढ़ाना और पुस्तक के अनित्य होने से वेद अनित्य नहीं हो सकते, क्योंकि वे बीजाङ्कुरन्याय से ईश्वर के ज्ञान में नित्य वर्त्तमान रहते हैं । सृष्टि की आदि में ईश्वर से वेदों की प्रसिद्धि होती है और प्रलय में जगत् के नहीं रहने से उनकी अप्रसिद्धि होती है, इस कारण से वेद नित्यस्वरूप ही बने रहते हैं । जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द, अक्षर, अर्थ और सम्बन्ध वेदों में हैं इसी प्रकार से पूर्वकल्प में थे और आगे

* ऋग्वेद १० । १६० । ३ ॥

भी होंगे, क्योंकि जो ईश्वर की विद्या है सो नित्य एक ही रस बनी रहती है उनके एक अक्षर का भी विपरीत भाव कभी नहीं होता। सो ऋग्वेद से लेके चारों वेदों की संहिता अब जिस प्रकार की हैं कि इनमें शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, पद और अक्षरों का जिस क्रम से वर्त्तमान है इसी प्रकार का क्रम सब दिन बना रहता है, क्योंकि ईश्वर का ज्ञान नित्य है, उसकी वृद्धि क्षय और विपरीतता कभी नहीं होती, इस कारण से वेदों को नित्यस्वरूप ही मानना चाहिये ॥

अत्र वेदानां नित्यत्वे व्याकरणशास्त्रादीनां साक्ष्यर्थं प्रमाणानि लिख्यन्ते। तत्राह महाभाष्यकारः पतञ्जलिमुनिः॥ नित्याः शब्दा नित्येषु शब्देषु कूटस्थैरविचालिभिर्वर्णैर्भवितव्यमनपायोपजनविकारिभिरिति। इदं वचनं प्रथमाह्निकमारभ्य बहुषु स्थलेषु व्याकरणमहाभाष्येऽस्ति। तथा श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः। इदम्, अइउण् सूत्रभाष्ये चोक्तमिति। अस्यायमर्थः। वैदिका लौकिकाश्च सर्वे शब्दा नित्याः सन्ति। कुतः। शब्दानां मध्ये कूटस्था विनाशरहिता अचला अनपाया अनुपजना अविकारिणो वर्णाः सन्त्यतः। अपायो लोपो निवृत्तिरग्रहणम्। उपजन आगमः। विकार आदेशः। एते न विद्यन्ते येषु शब्देषु तस्मान्नित्याः शब्दाः।

भाषार्थ

यह जो वेदों के नित्य होने का विषय है इस में व्याकरणादि शास्त्रों का प्रमाण साक्षी के लिये लिखते हैं। इन में से जो व्याकरण शास्त्र है सो संस्कृत और भाषाओं के सब शब्दविद्या का मुख्य मूल प्रमाण है। उसके बनाने वाले महामुनि पाणिनि और पतञ्जलि हैं। उन का ऐसा मत है कि सब शब्द नित्य हैं, क्योंकि इन शब्दों में जितने अक्षरादि अवयव हैं वे सब कूटस्थ अर्थात् विनाशरहित हैं, और वे पूर्वापर विचलते भी नहीं, उन का अभाव वा आगम कभी नहीं होता। तथा कान से सुन के जिन का ग्रहण होता है, बुद्धि से जो जाने जाते हैं, जो वाक् इन्द्रिय से उच्चारण करने से प्रकाशित होते हैं, और जिनका निवास का स्थान आकाश है उनको शब्द कहते हैं। इससे वैदिक अर्थात् जो वेद के शब्द और वेदों से जो शब्द लोक में आये हैं वे लौकिक कहाते हैं वे भी सब नित्य ही होते हैं, क्योंकि उन शब्दों के मध्य में सब वर्ण अविनाशी और अचल हैं, तथा इन में लोप, आगम और विकार नहीं बन सकते इस कारण से पूर्वोक्त शब्द नित्य हैं।

ननु गणपाठाष्टाध्यायीमहाभाष्येष्वपायादयो विधीयन्ते पुनरेतत्कथं संगच्छते ?, इत्येवं प्राप्ते ब्रूते महाभाष्यकारः । सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनः । एकदेशविकारे हि नित्यत्वं नोपपद्यते ॥ १ ॥ दाधाघ्वदावित्यस्य सूत्रस्योपरि महाभाष्यवचनम् । अस्यायमर्थः । सर्वे संघाताः सर्वेषां पदानां स्थान आदेशा भवन्ति । अर्थाच्छब्दसंघातान्तराणां स्थानेष्वन्ये शब्दसंघाताः प्रयुज्यन्ते । तद्यथा । वेदपार । गम् । ड । सुँ । भू । शप् । तिप् इत्येतस्य वाक्यसमुदायस्य स्थाने वेदपारगोऽभवदितीदं समुदायान्तरं प्रयुज्यते । अस्मिन्प्रयुक्तसमुदाये गम् ड सुँ शप् तिप् इत्येतेषाम् अम् ड् उँ श प् इ प् इत्येतेऽपयन्तीति केषांचिद्बुद्धिर्भवति सा भ्रममूलैवास्ति । कुतः । शब्दानामेकदेशविकारे चेत्युपलक्षणात् । नैव शब्दस्यैकदेशोपाय एकदेशोपजन एकदेशविकारेणि सति दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेराचार्य्यस्य मते शब्दानां नित्यत्वमुपपन्नं भवत्यतः । तथैवाऽऽगमो, भू इत्यस्य स्थाने भो इति विकारे चैवं संगतिः कार्य्येति । (श्रोत्रोपलब्धिरिति) श्रोत्रेन्द्रियेण ज्ञानं यस्य, बुद्ध्या नितरां ग्रहीतुं योग्य, उच्चारणेनाभिप्रकाशितो यो, यस्याकाशो देशोऽधिकरणं वर्त्तते स शब्दो भवतीति बोध्यम् । अनेन शब्दलक्षणेनापि शब्दो नित्य एवास्तीत्यवगम्यते । कथम् । उच्चारणश्रवणादिप्रयत्नक्रियायाः क्षणप्रध्वंसित्वात् । एकैकवर्णवर्तिनी वाक् इति महाभाष्यप्रामाण्यात् । प्रतिवर्णं वाक्क्रिया परिणमते, अतस्तस्या एवानित्यत्वं गम्यते न च शब्दस्येति ।

भाषार्थ

प्र०—गणपाठ अष्टाध्यायी और महाभाष्य में अक्षरों के लोप, आगम और विकार आदि कहे हैं फिर शब्दों का नित्यत्व कैसे हो सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि देते हैं कि शब्दों के समुदायों के स्थानों में अन्य शब्दों के समुदायों का प्रयोगमात्र होता है । जैसे वेदपारगम् ड सुँ भू शप् तिप् इस पदसमुदाय वाक्य के स्थान में वेदपारगोऽभवत् इस समुदायान्तर का प्रयोग किया जाता है । इस में किसी पुरुष की ऐसी बुद्धि होती है कि अम् ड् उँ श् प् इ प् इन की निवृत्ति होजाती है सो उसकी बुद्धि में भ्रममात्र है, क्योंकि शब्दों के समुदाय के स्थानों में दूसरे शब्दों के समुदायों के प्रयोग किये जाते हैं । सो यह मत दाक्षी के पुत्र पाणिनिमुनिजी का है जिनने अष्टाध्यायी आदि व्याकरण के ग्रन्थ किये हैं । सो मत इस प्रकार से है कि शब्द नित्य ही होते हैं, क्योंकि जो उच्चारण और श्रवणादि

हम लोगों की क्रिया है उस के क्षणभङ्ग होने से अनित्य गिनी जाती है, इससे शब्द अनित्य नहीं होते, क्योंकि यह जो हम लोगों की वाणी है वही वर्ण २ के प्रति अन्य २ होती जाती है। परन्तु शब्द तो सदा अखण्ड एकरस ही बने रहते हैं।

ननु च भोः शब्दोप्युपरतागतो भवति। उच्चारित उपागच्छति। अनुच्चारितोऽनागतो भवति। वाक्क्रियावत्। पुनस्तस्य कथं नित्यत्वं भवेत्?। अत्रोच्यते। नाकाशवत् पूर्वस्थितस्य शब्दस्य साधनाभावादभिव्यक्तिर्भवति। किन्तु तस्य प्राणवाक्क्रिययाभिव्यक्तिश्च। तद्यथा। गौरित्यत्र यावद्वाग्गकारेऽस्ति न तावदौकारे, यावदौकारे न तावद्विसर्जनीये। एवं वाक्क्रियोच्चारणस्यापायोपजनौ भवतः, न च शब्दस्याखण्डैकरसस्य, तस्य सर्वत्रोपलब्धत्वात्। यत्र खलु वायुवाक्क्रिये न भवतस्तत्रोच्चारणश्रवणे अपि न भवतः। अतः शब्दस्त्वाकाशवदेव सदा नित्योस्तीत्यादिव्याकरणमतेन सर्वेषां शब्दानां नित्यत्वमस्ति किमुत वैदिकानामिति।

भाषार्थ

प्र०—शब्द भी उच्चारण किये के पश्चात् नष्ट होजाता है और उच्चारण के पूर्व सुना नहीं जाता है, जैसे उच्चारणक्रिया अनित्य है वैसे ही शब्द भी अनित्य हो सकता है, फिर शब्दों को नित्य क्यों मानते हो ?, उ०—शब्द तो आकाश की नाईं सर्वत्र एकरस भर रहे हैं, परन्तु जब उच्चारणक्रिया नहीं होती तब प्रसिद्ध सुनने में नहीं आते। जब प्राण और वाणी की क्रिया से उच्चारण किये जाते हैं तब शब्द प्रसिद्ध होते हैं। जैसे गौः इस के उच्चारण में जब पर्यन्त उच्चारणक्रिया गकार में रहती है तब पर्यन्त औकार में नहीं, जब औकार में है तब गकार और विसर्जनीय में नहीं रहती। इसी प्रकार वाणी की क्रिया की उत्पत्ति और नाश होता है शब्दों का नहीं। किन्तु आकाश में शब्द की प्राप्ति होने से शब्द तो अखण्ड एकरस सर्वत्र भर रहे हैं, परन्तु जब पर्यन्त वायु और वाक् इन्द्रिय की क्रिया नहीं होती तब पर्यन्त शब्दों का उच्चारण और श्रवण भी नहीं होता। इससे यह सिद्ध हुआ कि शब्द आकाश की नाईं नित्य ही हैं। जब व्याकरण शास्त्र के मत से सब शब्द नित्य होते हैं तो वेदों के शब्दों की कथा तो क्या ही कहनी है, क्योंकि वेदों के शब्द तो सब प्रकार से नित्य ही बने रहते हैं।

एवं जैमिनिमुनिनापि शब्दस्य नित्यत्वं प्रतिपादितम् । नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात् । पूर्वमीमांसा, अ० १ । पा० १ । सू० १८ ॥ अस्यायमर्थः । (तु) शब्देनानित्यशङ्का निवार्य्यते । विनाशरहितत्वाच्छब्दो नित्योऽस्ति, कस्माद्दर्शनस्य परार्थत्वात् । दर्शनस्योच्चारणस्य परस्यार्थस्य ज्ञापनार्थत्वात्, शब्दस्यानित्यत्वं नैव भवति । अन्यथाऽयं गोशब्दार्थोऽस्तीत्यभिज्ञाऽनित्येन शब्देन भवितुमयोग्यास्ति । नित्यत्वे सति ज्ञाप्यज्ञापकयोर्विद्यमानत्वात् सर्वमेतत्संगतं स्यात् । अतश्चैकमेव गोशब्दं युगपदनेकेषु स्थलेष्वनेक उच्चारका उपलभन्ते पुनः पुनस्तमेव चेति । एवं जैमिनिना शब्दनित्यत्वेऽनेके हेतवः प्रदर्शिताः ।

भाषार्थ

इसी प्रकार जैमिनि मुनि ने भी शब्द को नित्य माना है । शब्द में जो अनित्य होने की शङ्का आती है उसका (तु) शब्द से निवारण किया है । शब्द नित्य ही हैं अर्थात् नाशरहित हैं, क्योंकि उच्चारणक्रिया से जो शब्द का श्रवण होता है सो अर्थ के जनाने ही के लिये है, इससे शब्द अनित्य नहीं हो सकता । जो शब्द का उच्चारण किया जाता है उसकी ही प्रत्यभिज्ञा होती है कि श्रोत्रद्वारा ज्ञान के बीच में वही शब्द स्थिर रहता है फिर उसी शब्द से अर्थ की प्रतीति होती है, जो शब्द अनित्य होता तो अर्थ का ज्ञान कौन कराता, क्योंकि वह शब्द ही नहीं रहा फिर अर्थ को कौन जनावे । और जैसे अनेक देशों में अनेक पुरुष एक काल में ही एक गो शब्द का उच्चारण करते हैं इसी प्रकार उसी शब्द का उच्चारण वारंवार भी होता है, इस कारण से भी शब्द नित्य हैं, जो शब्द अनित्य होता तो यह व्यवस्था कभी नहीं बन सकती । सो जैमिनि मुनि ने इस प्रकार के अनेक हेतुओं से पूर्वमीमांसा शास्त्र में शब्द को नित्य सिद्ध किया है ।

अन्यच्च वैशेषिकसूत्रकारः कणादमुनिरप्यत्राह । तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ॥ वैशेषिके, अ० १ । आ० १ । सू० ३ ॥ अस्यायमर्थः । तद्वचनात्तयोर्धर्मेश्वरयोर्वचनाद्धर्मस्यैव कर्तव्यतया प्रतिपादनादीश्वरेणैवोक्तत्वाच्चाम्नायस्य वेदचतुष्टयस्य प्रामाण्यं सर्वैर्नित्यत्वेन स्वीकार्यम् ।

भाषार्थ

इसी प्रकार वैशेषिकशास्त्र में कणादमुनि ने भी कहा है, (तद्वचना०) । वेद ईश्वरोक्त हैं, इनमें सत्य विद्या और पक्षपातरहित धर्म का ही प्रतिपादन है, इससे चारों वेद नित्य हैं । ऐसा ही सब मनुष्यों को मानना उचित है । क्योंकि ईश्वर नित्य है इससे उसकी विद्या भी नित्य है ।

तथा स्वकीयन्यायशास्त्रे गोतममुनिरप्यत्राह । मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्चतत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ॥ अ० २ । आ० १ । सू० ६७ ॥ अस्यायमर्थः । तेषां वेदानां नित्यानामीश्वरोक्तानां प्रामाण्यं सर्वैः स्वीकार्य्यम् । कुतः ?, आप्तप्रामाण्यात् । धर्मात्मभिः कपटछलादिदोषरहितैर्दयालुभिः सत्योपदेष्टृभिर्विद्यापारगैर्महायोगिभिः सर्वैर्ब्रह्मादिभिराप्तैर्वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमतः । किंवत् ?, मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवत् । यथा सत्यपदार्थविद्याप्रकाशकानां मन्त्राणां विचाराणां सत्यत्वेन प्रामाण्यं भवति । यथा चायुर्वेदोक्तस्यैकदेशोक्तौषधसेवनेन रोगनिवृत्त्या तद्भिन्नस्यापि भागस्य तादृशस्य प्रामाण्यं भवति । तथा वेदोक्तार्थस्यैकदेशप्रत्यक्षेणेतरस्यादृष्टार्थविषयस्य वेदभागस्याऽपि प्रामाण्यमङ्गीकार्य्यम् । एतत्सूत्रस्योपरि भाष्यकारेण वात्स्यायनमुनिनाप्येवं प्रतिपादितम् । द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुमानम् । य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनामित्यायुर्वेदप्रामाण्यवद्वेदप्रामाण्यमनुमातव्यमिति । नित्यत्वाद्वेदवाक्यानां प्रमाणत्वे तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यादित्युक्तम् * । अस्यायमभिप्रायः । यथाप्तोपदेशस्य शब्दस्य प्रामाण्यं भवति तथा सर्वथाप्तेनेश्वरेणोक्तानां वेदानां सर्वैराप्तैः प्रामाण्येनाङ्गीकृतत्वाद्वेदाः प्रमाणमिति बोध्यम् । अत ईश्वरविद्यामयत्वाद्वेदानां नित्यत्वमेवोपपन्नं भवतीति दिक् ।

भाषार्थ

वैसे ही न्यायशास्त्र में गोतम मुनि भी शब्द को नित्य कहते हैं, (मन्त्रायु०) । वेदों को नित्य ही मानना चाहिये, क्योंकि सृष्टि के आरम्भ से लेके आज पर्यन्त ब्रह्मादि जितने आप्त होते आये हैं वे सब वेदों को नित्य ही मानते आये हैं । उन आप्तों का अवश्य ही प्रमाण करना चाहिये । क्योंकि आप्त लोग वे होते हैं जो धर्मात्मा

*उपलभ्यमानेषु वात्स्यायनभाष्येषु "दित्युक्तमि,ति" स्थाने "दित्युक्तमि"ति पाठो वर्तते ॥

कपट छलादि दोषों से रहित सब विद्याओं से युक्त, महायोगी और सब मनुष्यों के सुख होने के लिये सत्य का उपदेश करनेवाले हैं, जिनमें लेशमात्र भी पक्षपात वा मिथ्याचार नहीं होता। उन्होंने वेदों का यथावत् नित्य गुणों से प्रमाण किया है जिन्होंने आयुर्वेद को बनाया है। जैसे आयुर्वेद वैद्यक शास्त्र के एक देश में कहे औषध और पथ्य के सेवन करने से रोग की निवृत्ति से सुख प्राप्त होता है, जैसे उसके एक देश के कहे के सत्य होने से उस के दूसरे भाग का भी प्रमाण होता है, इसी प्रकार वेदों का भी प्रमाण करना सब मनुष्यों को उचित है, क्योंकि वेद के एक देश में कहे अर्थ का सत्यपन विदित होने से उससे भिन्न जो वेदों के भाग हैं कि जिन का अर्थ प्रत्यक्ष न हुआ हो उनका भी नित्य प्रमाण अवश्य करना चाहिये, क्योंकि आप्त पुरुष का उपदेश मिथ्या नहीं हो सकता। (मन्त्रायु०) इस सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनि ने वेदों का नित्य होना स्पष्ट प्रतिपादन किया है कि जो आप्त लोग हैं वे वेदों के अर्थ को देखने दिखाने और जनाने वाले हैं, जो २ उस २ मन्त्र के अर्थ के द्रष्टा वक्ता होते हैं वे ही आयुर्वेद आदि के बनानेवाले हैं। जैसे उन का कथन आयुर्वेद में सत्य है वैसे ही वेदों के नित्य मानने का उनका जो व्यवहार है सो भी सत्य ही है ऐसा मानना चाहिये। क्योंकि जैसे आप्तों के उपदेश का प्रमाण अवश्य होता है वैसे ही सब आप्तों का भी जो परम आप्त सब का गुरु परमेश्वर है उस के किये वेदों का भी नित्य होने का प्रमाण अवश्य ही करना चाहिये।

अत्र विषये योगशास्त्रे पतञ्जलिमुनिरप्याह। स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ पातञ्जलयोगशास्त्रे, अ० १। पा० १। सू० २६ ॥ यः पूर्वेषां सृष्ट्यादावुत्पन्नानामग्निवाय्वादित्याङ्गिरोब्रह्मादीनां प्राचीनानामस्मदादीनामिदानींतनानामग्रे भविष्यतां स सर्वेषामेव ईश्वर एव गुरुरस्ति। गृणाति वेदद्वारोपदिशति सत्यानर्थान् स गुरुः। स च सर्वदा नित्योस्ति। तत्र कालगतेरप्रचारत्वात्। न स ईश्वरो ह्यविद्यादिक्लेशैः पापकर्मभिस्तद्वासनया च कदाचिद्युक्तो भवति। यस्मिन् निरतिशयं नित्यं स्वाभाविकं ज्ञानमस्ति तदुक्तत्वाद्वेदानामपि सत्यार्थवत्त्वनित्यत्वे वेद्ये इति।

भाषार्थ

इस विषय में योगशास्त्र के कर्त्ता पतञ्जलि मुनि भी वेदों को नित्य मानते हैं,

(स एष०)। जो कि प्राचीन अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि पुरुष सृष्टि की आदि में उत्पन्न हुए थे उन से लेके हम लोग पर्यन्त और हम से आगे जो होने वाले हैं इन सब का गुरु परमेश्वर ही है, क्योंकि वेदद्वारा सत्य अर्थों का उपदेश करने से परमेश्वर का नाम गुरु है। सो ईश्वर नित्य ही है, क्योंकि ईश्वर में क्षणादि काल की गति का प्रचार ही नहीं है और वह अविद्या आदि क्लेशों से और पापकर्म तथा उनकी वासनाओं के भोगों से अलग है। जिस में अनन्त विज्ञान सर्वदा एकरस बना रहता है उसी के रचे वेदों का भी सत्यार्थपना और नित्यपना भी निश्चित है, ऐसा ही सब मनुष्यों को जानना चाहिये।

एवमेव स्वकीयशांख्यशास्त्रे पञ्चमाध्याये कपिलाचार्य्योप्यत्राह। निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतःप्रामाण्यम् ॥ सू० ५१ ॥ अस्यायमर्थः। वेदानां निजशक्त्यभिव्यक्तेः पुरुषसहचारिप्रधानसामर्थ्यात् प्रकटत्वात्स्वतःप्रामाण्यनित्यत्वे स्वीकार्य्ये इति।

भाषार्थ

इसी प्रकार से सांख्यशास्त्र में कपिलाचार्य भी कहते हैं, (निज०)। परमेश्वर की (निज) अर्थात् स्वाभाविक जो विद्या शक्ति है उससे प्रकट होने से वेदों का नित्यत्व और स्वतःप्रमाण सब मनुष्यों को स्वीकार करना चाहिये।

अस्मिन् विषये स्वकीयवेदान्तशास्त्रे कृष्णद्वैपायनो व्यासमुनिरप्याह। शास्त्रयोनित्वात्॥ अ० १। पा० १। सू० ३ ॥ अस्यायमर्थः। ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत्सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म। नहीदृशस्य शास्त्रस्यर्ग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवोस्ति। यद्यद्विस्तरार्थं शास्त्रं यस्मात्पुरुषविशेषात्संभवति यथा व्याकरणादि पाणिन्यादेर्ज्ञेयैकदेशार्थमपि स ततोप्यधिकतरविज्ञान इति सिद्धं लोके किमु वक्तव्यमितीदं वचनं शङ्कराचार्य्येणास्य सूत्रस्योपरि स्वकीयव्याख्याने गदितम्। अतः किमागतं, सर्वज्ञस्येश्वरस्य शास्त्रमपि नित्यं सर्वार्थज्ञानयुक्तं च। भवितुमर्हति। अन्यच्च। तस्मिन्नेवाध्याये। अतएव च नित्यत्वम्॥ पा० ३। सू० २९ ॥ अस्यायमर्थः। अत ईश्वरोक्तत्वान्नित्यधर्मकत्वाद्वेदानां स्वतः प्रामाण्यं सर्वविद्यावत्त्वं सर्वेषु कालेष्वव्यभिचारित्वान्नित्यत्वं च सर्वैर्मनुष्यैर्मन्तव्यमिति सिद्धम्। न वेदस्य प्रामाण्यसिद्ध्यर्थमन्यत्प्रमाणं स्वीक्रियते। किंत्वेतत्साक्षिवद्विज्ञेयम्। वेदानां स्वतः-

प्रमाणत्वात्। सूर्यवत्। यथा सूर्यः स्वप्रकाशः सन् संसारस्थान्महतोऽल्पांश्च पर्वतादीन् त्रसरेणवन्तान् पदार्थान्प्रकाशयति तथा वेदोपि स्वयं स्वप्रकाशः सन् सर्वा विद्याः प्रकाशयतीत्यवधेयम्।

भाषार्थ

इसी प्रकार से वेदान्तशास्त्र में वेदों के नित्य होने के विषय में व्यासजी ने भी लिखा है, (शास्त्र०)। इस सूत्र के अर्थ में शङ्कराचार्य्य ने भी वेदों को नित्य मान के व्याख्यान किया है कि ऋग्वेदादि जो चारों वेद हैं वे अनेक विद्याओं से युक्त हैं, सूर्य्य के समान सब सत्य अर्थों के प्रकाश करने वाले हैं, उनका बनानेवाला सर्वज्ञादि गुणों से युक्त परब्रह्म है, क्योंकि सर्वज्ञ ब्रह्म से भिन्न कोई जीव सर्वज्ञगुणयुक्त इन वेदों को बना सके ऐसा संभव कभी नहीं हो सकता। किन्तु वेदार्थविस्तार के लिये किसी जीवविशेष पुरुष से अन्य शास्त्र बनाने का संभव होता है। जैसे पाणिनि आदि मुनियों ने व्याकरणादि शास्त्रों को बनाया है। उन में विद्या के एक २ देश का प्रकाश किया है। सो भी वेदों के आश्रय से बना सके हैं। और जो सब विद्याओं से युक्त वेद हैं उन को सिवाय परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं बना सकता, क्योंकि परमेश्वर से भिन्न सब विद्याओं में पूर्ण कोई भी नहीं है। किञ्च परमेश्वर के बनाये वेदों के पढ़ने विचारने और उसी के अनुग्रह से मनुष्यों को यथाशक्ति विद्या का बोध होता है, अन्यथा नहीं, ऐसा शंकराचार्य्य ने भी कहा है। इससे क्या आया कि वेदों के नित्य होने में सब आर्य्य लोगों की साक्षी है। और यह भी कारण है कि जो ईश्वर नित्य और सर्वज्ञ है उस के किये वेद भी नित्य और सर्वज्ञ होने के योग्य हैं, अन्य का बनाया ऐसा ग्रन्थ कभी नहीं हो सकता। (अतएव०) इस सूत्र से भी यही आता है कि वेद नित्य हैं। और सब सज्जन लोगों को भी ऐसा ही मानना उचित है। तथा वेदों के प्रमाण और नित्य होने में अन्य शास्त्रों के प्रमाणों को साक्षी के समान जानना चाहिये, क्योंकि वे अपने ही प्रमाण से नित्य सिद्ध हैं। जैसे सूर्य के प्रकाश में सूर्य का ही प्रमाण है अन्य का नहीं, और जैसे सूर्य्य प्रकाशस्वरूप है, पर्वत से लेके त्रसरेणु पर्य्यन्त पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे वेद भी स्वयंप्रकाश हैं और सब सत्यविद्याओं का भी प्रकाश कर रहे हैं।

अतएव स्वयमीश्वरः स्वप्रकाशितस्य वेदस्य स्वस्य च सिद्धिकरं प्रमाणमाह।

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ १ ॥ य० अ० ४० । मं० ८ ॥ अस्यायमभिप्रायः । यः पूर्वोक्तः सर्वव्यापकत्वादिविशेषणयुक्त ईश्वरोस्ति (स, पर्य्यगात्) परितः सर्वतोऽगात् गतवान्प्राप्तवानस्ति, नैवैकः परमाणुरपि तद्व्याप्तया विनास्ति, (शुक्रं) तद्ब्रह्म सर्वजगत्कर्त्तृवीर्य्यवदनन्तबलवदस्ति, (अकायं) तत्स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरत्रयसम्बन्धरहितम्, (अव्रणं) नैवैतस्मिंश्छिद्रं कर्त्तुं परमाणुरपि शक्नोति, अतएव छेदरहितत्वादक्षतम्, (अस्नाविरं) तन्नाडीसम्बन्धरहितत्वाद्बन्धनावरणविमुक्तम्, (शुद्धं) तदविद्यादिदोषेभ्यः सर्वदा पृथग्वर्तमानम्, (अपापविद्धम्) नैव तत्पापयुक्तं पापकारि च कदाचिद्भवति, (कविः) सर्वज्ञः, (मनीषी) यः सर्वेषां मनसामीषी साक्षी ज्ञातास्ति, (परिभूः) सर्वेषामुपरि विराजमानः, (स्वयंभूः) यो निमित्तोपादानसाधारणकारणत्रयरहितः, स एव सर्वेषां पिता, नह्यस्य कश्चित् जनका, स्वसामर्थ्येन सहैव सदा वर्त्तमानोस्ति, (शाश्वतीभ्यः) य एवंभूतः सच्चिदानन्दस्वरूपः परमात्मा (सः) सर्गादौ स्वकीयाभ्यः शाश्वतीभ्यो निरन्तराभ्याः समाभ्यः प्रजाभ्यो याथातथ्यतो यथार्थस्वरूपेण वेदोपदेशेन (अर्थान् व्यदधात्) विधत्तवानर्थाद्यदा यदा सृष्टिं करोति तदा तदा प्रजाभ्यो हितायादिसृष्टौ सर्वविद्यासमन्वितं वेदशास्त्रं स एव भगवानुपदिशति । अतएव नैव वेदानामनियतत्त्वं केनापि मन्तव्यम् । तस्य विद्यायाः सर्वदैकरसवर्त्तमानत्वात् ।

भाषार्थ

ऐसे ही परमेश्वर ने अपने और अपने किये वेदों के नित्य और स्वतःप्रमाण होने का उपदेश किया है सो आगे लिखते हैं । (स, पर्यगात्) यह मन्त्र ईश्वर और उस के किये वेदों का प्रकाश करता है, कि जो ईश्वर सर्वव्यापक आदि विशेषणयुक्त है सो सब जगत् में परिपूर्ण हो रहा है । उस की व्याप्ति से एक परमाणु भी रहित नहीं है । सो ब्रह्म (शुक्रं) सब जगत् का करने वाला और अनन्त विद्यादि बल से युक्त है, (अकायं) जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों के संयोग से रहित है, अर्थात् वह कभी जन्म नहीं लेता, (अव्रणं) जिस में एक परमाणु भी छिद्र नहीं कर सकता, इसीसे वह सर्वथा छेदरहित है, (अस्नाविरं) वह नाड़ियों के बन्धन से अलग है जैसा वायु और रुधिर नाड़ियों में बंधा रहता है ऐसा बन्धन परमेश्वर में

नहीं होता, (शुद्धं) जो अविद्या अज्ञानादि क्लेश और सब दोषों से पृथक् है, (अपापविद्धम्) सो ईश्वर पापयुक्त वा पाप करने वाला कभी नहीं होता क्योंकि वह स्वभाव से ही धर्मात्मा है, (कविः) जो सब का जानने वाला है, (मनीषी) जो सब का अन्तर्यामी है और भूत भविष्यत् तथा वर्त्तमान इन तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जानता है (परिभूः) जो सब के ऊपर विराजमान हो रहा है, (स्वयंभूः) जो कभी उत्पन्न नहीं होता और उसका कारण भी कोई नहीं, किन्तु वही सब का कारण, अनादि और अनन्त है, इससे वही सब का माता पिता है और अपने ही सत्य सामर्थ्य से सदा वर्त्तमान रहता है, इत्यादि लक्षणों से युक्त जो सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर है (शाश्वतभ्यः०) उसने सृष्टि की आदि में अपनी प्रजा को जो कि उसके सामर्थ्य में सदा से वर्त्तमान है उसके सब सुखों के लिये (अर्थान् व्यदधात्) सत्य अर्थों का उपदेश किया है । इसी प्रकार जब २ परमेश्वर सृष्टि को रचता है तब २ प्रजा के हित के लिये सृष्टि की आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है और जब २ सृष्टि का प्रलय होता है तब २ वेद उसके ज्ञान में सदा बने रहते हैं, इससे उनको सदैव नित्य मानना चाहिये ।

यथा शास्त्रप्रमाणेन वेदा नित्याः सन्तीति निश्चयोऽस्ति तथा युक्त्यापि । तद्यथा । नासत आत्मलाभो न सत आत्महानम्, योऽस्ति स भविष्यति । इति न्यायेन वेदानां नित्यत्वं स्वीकार्य्यम् । कुतः ?, यस्य मूलं नास्ति नैव तस्य शाखादयः संभवितुमर्हन्ति । बन्ध्यापुत्रविवाहदर्शनवत् । पुत्रो भवेच्चेत्तदा बन्ध्यात्वं न सिध्येत्, स नास्ति चेत्पुनस्तस्य विवाहदर्शने कथं भवतः । एवमेवात्रापि विचारणीयम् । यदीश्वरे विद्यानन्ता न भवेत्कथमुपदिशेत् । स नोपदिशेच्चेन्नैव कस्यापि मनुष्यस्य विद्यासंबन्धो दर्शनं च स्याताम् । निर्मूलस्य प्ररोहाभावात् । नह्यस्मिन् जगति निर्मूलमुत्पन्नं किञ्चिद्दृश्यते । यस्य सर्वेषां मनुष्याणां साक्षादनुभवोऽस्ति सोऽत्र प्रकाश्यते । यस्य प्रत्यक्षोऽनुभवस्तस्यैव संस्कारो, यस्य संस्कारस्तस्यैव स्मरणं ज्ञानं, तेनैव प्रवृत्तिनिवृत्ती भवतो, नान्यथेति । तद्यथा । येन संस्कृतभाषा पठ्यते तस्याऽस्या एव संस्कारो भवति नाऽन्यस्याः । येन देशभाषाऽधीयते (तस्य) तस्या एव संस्कारो भवति नातोऽन्यथा । एवं सृष्ट्यादावीश्वरोपदेशाऽध्यापनाभ्यां विना नैव कस्यापि विद्याया अनुभवः स्यात्, पुनः कथं संस्कारस्तेन विना कुतः स्मरणम्

न च स्मरणेन विना विद्याया लेशोपि कस्यचिद्भवितुमर्हति ।

भाषार्थ

जैसे शास्त्रों के प्रमाणों से वेद नित्य हैं वैसे ही युक्ति से भी उनका नित्यपन सिद्ध होता है, क्योंकि असत् से सत् का होना अर्थात् अभाव से भाव का होना कभी नहीं हो सकता, तथा सत् का अभाव भी नहीं हो सकता । जो सत्य है उसी से आगे प्रवृत्ति भी हो सकती है और जो वस्तु ही नहीं है उससे दूसरी वस्तु किसी प्रकार से नहीं हो सकती । इस न्याय से भी वेदों को नित्य ही मानना ठीक है, क्योंकि जिसका मूल नहीं होता है उसकी डाली, पत्र, पुष्प और फल आदि भी कभी नहीं हो सकते । जैसे कोई कहे कि बन्ध्या के पुत्र का विवाह मैंने देखा । यह उसकी बात असम्भव है । क्योंकि जो उसके पुत्र होता तो वह बन्ध्या ही क्यों होती और जब पुत्र ही नहीं है तो उसका विवाह और दर्शन कैसे हो सकते हैं । वैसे ही जब ईश्वर में अनन्त-विद्या है तभी मनुष्यों को विद्या का उपदेश भी किया है और जो ईश्वर में अनन्त-विद्या न होती तो वह उपदेश कैसे कर सकता और वह जगत् को भी कैसे रच सकता । जो मनुष्यों को ईश्वर अपनी विद्या का उपदेश न करता तो किसी मनुष्य को विद्या जो यथार्थ ज्ञान है सो कभी नहीं होता, क्योंकि इस जगत् में निर्मूल का होना वा बढ़ना सर्वथा असम्भव है । इससे यह जानना चाहिये कि परमेश्वर से वेदविद्या मूल को प्राप्त होके मनुष्यों में विद्यारूप वृक्ष विस्तृत हुआ है । इस में और भी युक्ति है कि जिसका सब मनुष्यों को अनुभव और प्रत्यक्ष ज्ञान होता है उसी का दृष्टान्त देते हैं । देखो कि जिसका साक्षात् अनुभव होता है उसी का ज्ञान में संस्कार होता है, संस्कार से स्मरण, स्मरण से इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट से निवृत्ति होती है अन्यथा नहीं । जो संस्कृत भाषा को पढ़ता है उसके मन में उसी का संस्कार होता है अन्य भाषा का नहीं और जो किसी देशभाषा को पढ़ता है उसको देशभाषा का संस्कार होता है अन्य का नहीं । इसी प्रकार जो वेदों का उपदेश ईश्वर न करता तो किसी मनुष्य को विद्या का संस्कार नहीं होता, जब विद्या का संस्कार न होता तो उसका स्मरण भी नहीं होता, स्मरण से विना किसी मनुष्य को विद्या का लेश भी न हो सकता । इस युक्ति से क्या जाना जाता है कि ईश्वर के उपदेश से वेदों को सुन के पढ़ के और विचार के ही मनुष्यों को विद्या का संस्कार आज पर्यन्त होता चला आया है अन्यथा कभी नहीं हो सकता ।

किं च भोः, मनुष्याणां स्वाभाविकी या प्रवृत्तिर्भवति, तत्र सुखदुःखानुभवश्च, तयोत्तरोत्तरकाले क्रमानुक्रमाद्विद्यावृद्धिर्भविष्यत्येव, पुनः किमर्थमीश्वराद्वेदोत्पत्तेः स्वीकार इति ?। एवं प्राप्ते ब्रूमः एतद्वेदोत्पत्तिप्रकरणे परिहृतम् । तत्रैष निर्णयः, यथानेदानीमन्येभ्यः पठनेन विना कश्चिदपि विद्वान् भवति तस्य ज्ञानोन्नतिश्च, तथा नैवेश्वरोपदेशागमनेन विना कस्यापि विद्याज्ञानोन्नतिर्भवेत् । अशिक्षितबालकवनस्थवत् । यथोपदेशमन्तरा न बालकानां वनस्थानां च विद्यामनुष्यभाषाविज्ञाने अपि भवतः पुनर्विद्योत्पत्तेस्तु का कथा । तस्मादीश्वरादेव या वेदविद्याऽऽगता सा नित्यैवास्ति, तस्य सत्यगुणवत्त्वात् । यन्नित्यं वस्तु वर्त्तते तस्य नामगुणकर्माण्यपि नित्यानि भवन्ति, तदाधारस्य नित्यत्वात् । नैवाधिष्ठानमन्तरा नामगुणकर्मादयो गुणाः स्थितिं लभन्ते, तेषां पराश्रितत्वात् । यन्नित्यं नास्ति न तस्यैतान्यपि नित्यानि भवन्ति । नित्यं चोत्पत्तिविनाशाभ्यामितरद्भवितुमर्हति । उत्पत्तिर्हि पृथग्भूतानां द्रव्याणां या संयोगविशेषाद्भवति । तेषामुत्पन्नानां कार्य्यद्रव्याणां सति वियोगे विनाशश्च संघाताभावात् । अदर्शनं च विनाशः । ईश्वरस्यैकरसत्वान्नैव तस्य संयोगवियोगाभ्यां संस्पर्शोऽपि भवति । अत्र कणादमुनिकृतं सूत्रं प्रमाणमस्ति । सदकारणवन्नित्यम् ॥ १ ॥ वैशेषिके, अ० ४ । पा० ४ । सू० १ ॥ अस्यायमर्थः । यत्कार्य्यं कारणादुत्पद्य विद्यमानं भवति तदनित्यमुच्यते, तस्य प्रागुत्पत्तेरभावात् । यत्तु कस्यापि कार्य्यं नैव भवति किन्तु सदैव कारणरूपमेव तिष्ठति तन्नित्यं कथ्यते । यद्यत्संयोगजन्यं तत्तत्कर्त्रपेक्षं भवति, कर्त्तापि संयोगजन्यश्चेत्तर्हि तस्याप्यन्योन्यः कर्त्तास्तीत्यागच्छेत् । एवं पुनः पुनः प्रसङ्गादनवस्थापत्तिः । यच्च संयोगेन प्रादुर्भूतं नैव तस्य प्रकृतिपरमाण्वादीनां संयोगकरणे सामर्थ्यं भवितुमर्हति, तस्मात्तेषां सूक्ष्मत्वात् । यद्यस्मात्सूक्ष्मं तत्तस्यात्मा भवति, स्थूले सूक्ष्मस्य प्रवेशार्हत्वात्, अयोग्निवत् । यथा सूक्ष्मत्वादग्निः कठिनं स्थूलमयः प्रविश्य तस्यावयवानां पृथग्भावं करोति, तथा जलमपि पृथिव्याः सूक्ष्मत्वात्तत्कणान् प्रविश्य संयुक्तमेकं पिण्डं करोति, छिनत्ति च । तथा परमेश्वरः संयोगवियोगाभ्यां पृथग्भूतो विभुरस्त्यतो नियमेन रचनं विनाशं च कर्त्तुमर्हति, न चान्यथा । यथा संयोगवियोगान्तर्गतत्वान्नास्मदादीनां प्रकृतिपरमाण्वादीनां संयोगवियोगकरणे सामर्थ्यमस्ति । तथेश्वरेऽपि भवेत् । अन्यच्च । यतः संयोगवियोगारम्भो भवति स तस्मात्पृथग्भूतोऽस्ति, तस्य संयोगवियोगारब्धस्यादिकारणत्वात् । आदिकारणस्याभावात्संयोगवियोगारम्भस्यानुत्पत्तेश्च । एवंभूतस्य सदा-

निर्विकारस्वरूपस्याजस्यानादेर्नित्यस्य सत्यसामर्थ्यस्येश्वरस्य सकाशाद्वेदानां प्रादुर्भावात्तस्य ज्ञाने सदैव वर्त्तमानत्वात्सत्यार्थवत्त्वं नित्यत्वं चैतेषामस्तीति सिद्धम् ।

इति वेदानां नित्यत्वविचारः

भाषार्थ

प्र०—मनुष्यों की स्वभाव से जो चेष्टा है उस में सुख और दुःख का अनुभव भी होता है, उससे उत्तर २ काल में क्रमानुसार से विद्या की वृद्धि भी अवश्य होगी, तब वेदों को भी मनुष्य लोग रच लेंगे फिर ईश्वर ने वेद रचे ऐसा क्यों मानना ? ।

उ०—इस का समाधान वेदोत्पत्ति के प्रकरण में कर दिया है, वहां यही निर्णय किया है कि जैसे इस समय में अन्य विद्वानों से पढ़े विना कोई भी विद्यावान् नहीं होता और इसी के विना किसी पुरुष में ज्ञान की वृद्धि भी देखने में नहीं आती वैसे ही सृष्टि के आरम्भ में ईश्वरोपदेश की प्राप्ति के विना किसी मनुष्य की विद्या और ज्ञान की बढ़ती कभी नहीं हो सकती । इस में अशिक्षित बालक और वनवासियों का दृष्टान्त दिया था कि जैसे उस बालक और वन में रहने वाले मनुष्य को यथावत् विद्या का ज्ञान नहीं होता तथा अच्छी प्रकार उपदेश के विना उनको लोकव्यवहार का भी ज्ञान नहीं होता फिर विद्या की प्राप्ति तो अत्यन्त कठिन है । इससे क्या जानना चाहिये कि परमेश्वर के उपदेश वेदविद्या आने के पश्चात् ही मनुष्यों को विद्या और ज्ञान की उन्नति करनी भी सहज हुई है, क्योंकि उसके सभी गुण सत्य हैं, इससे उसकी विद्या जो वेद है वह भी नित्य ही है । जो नित्य वस्तु है उस के नाम, गुण और कर्म भी नित्य ही होते हैं । क्योंकि उन का आधार नित्य है । और विना आधार से नाम, गुण और कर्मादि स्थिर नहीं हो सकते, क्योंकि वे द्रव्यों के आश्रय सदा रहते हैं । जो अनित्य वस्तु है उस के नाम, गुण और कर्म भी अनित्य होते हैं । सो नित्य किस को कहना ? जो उत्पत्ति और विनाश से पृथक् है । तथा उत्पत्ति क्या कहाती है ? कि जो अनेक द्रव्यों के संयोग विशेष से स्थूल पदार्थ का उत्पन्न होना । और जब वे पृथक् २ होके उन द्रव्यों के वियोग से जो कारण में उन की परमाणुरूप अवस्था होती है उस को विनाश कहते हैं । और जो द्रव्य संयोग से स्थूल होते हैं वे चक्षु आदि इन्द्रियों से देखने में आते हैं, फिर उन स्थूल द्रव्यों के परमाणुओं का जब वियोग हो जाता है तब सूक्ष्म के होने से वे द्रव्य देख नहीं पड़ते इस का नाम

नाश है। क्योंकि अदर्शन को ही नाश कहते हैं। जो द्रव्य संयोग और वियोग से उत्पन्न और नष्ट होता है उसी को कार्य्य और अनित्य कहते हैं, और जो संयोग वियोग से अलग है उस की न कभी उत्पत्ति और न कभी नाश होता है। इस प्रकार का पदार्थ एक परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण है। क्योंकि वह सदा अखण्ड एकरस ही बना रहता है। इसी से उसको नित्य कहते हैं। इस में कणादमुनि के सूत्र का भी प्रमाण है। (सत्कार०) जो किसी का कार्य्य है कि कारण से उत्पन्न होके विद्यमान होता है उस को अनित्य कहते हैं। जैसे मट्टी से घड़ा हो के वह नष्ट भी हो जाता है इसी प्रकार परमेश्वर के सामर्थ्य कारण से सब जगत् उत्पन्न हो के विद्यमान होता है फिर प्रलय में स्थूलाकार नहीं रहता किन्तु वह कारणरूप तो सदा ही बना रहता है। इससे क्या आया कि जो विद्यमान हो और जिस का कारण कोई भी न हो अर्थात् स्वयं कारणरूप ही हो उसको नित्य कहते हैं। क्योंकि जो २ संयोग से उत्पन्न होता है सो २ बनाने वाले की अपेक्षा अवश्य रखता है जैसे कर्म, नियम और कार्य्य ये सब कर्त्ता, नियन्ता और कारण को ही सदा जनाते हैं। और जो कोई ऐसा कहे कि कर्त्ता को भी किसी ने बनाया होगा तो उससे पूछना चाहिये उस कर्त्ता के कर्त्ता को किसने बनाया है। इसी प्रकार यह अनवस्थाप्रसंग अर्थात् मर्यादारहित होता है। जिस की मर्यादा नहीं है वह व्यवस्था के योग्य नहीं ठहर सकता। और जो संयोग से उत्पन्न होता है वह प्रकृति और परमाणु आदि के संयोग करने में समर्थ ही नहीं हो सकता। इससे क्या आया कि जो जिससे सूक्ष्म होता है वही उसका आत्मा होता है, अर्थात् स्थूल में सूक्ष्म व्यापक होता है। जैसे लोहे में अग्नि प्रविष्ट हो के उस के सब अवयवों में व्याप्त होता है और जैसे जल पृथिवी में प्रविष्ट होके उस के कणों के संयोग से पिण्डा करने में हेतु होता है तथा उस का छेदन भी करता है, वैसे ही परमेश्वर सब संयोग और वियोग से पृथक्, सब में व्यापक, प्रकृति और परमाणु आदि से भी अत्यन्त सूक्ष्म और चेतन है, इसी कारण से प्रकृति और परमाणु आदि द्रव्यों के संयोग करके जगत् को रच सकता है। जो ईश्वर उन से स्थूल होता तो उन का ग्रहण और रचन कभी नहीं कर सकता, क्योंकि जो स्थूल पदार्थ होते हैं वे सूक्ष्म पदार्थ के नियम करने में समर्थ नहीं होते, जैसे हम लोग प्रकृति और परमाणु आदि के संयोग और वियोग करने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि जो संयोग वियोग के भीतर है वह उस के संयोग वियोग करने में समर्थ नहीं हो सकता, तथा जिस वस्तु से संयोग वियोग का आरम्भ होता वह वस्तु संयोग और वियोग से

अलग ही होता है, क्योंकि वह संयोग और वियोग के आरम्भ के नियमों का कर्त्ता और आदिकारण होता है। तथा आदिकारण के अभाव से संयोग और वियोग का होना ही असम्भव है। इससे क्या जानना चाहिये कि जो सदा निर्विकारस्वरूप, अज, अनादि, नित्य, सत्यसामर्थ्य से युक्त और अनन्त विद्यावाला ईश्वर है उस की विद्या से वेदों के प्रकट होने और उस के ज्ञान में वेदों के सदैव वर्त्तमान रहने से वेदों को सत्यार्थयुक्त और नित्य सब मनुष्यों को मानना योग्य है। यह संक्षेप से वेदों के नित्य होने का विचार किया।

इति वेदानां नित्यत्वविचारः

अथ वेदविषयविचारः

अत्र चत्वारो वेदविषयाः सन्ति। विज्ञानकर्मोपासनाज्ञानकाण्डभेदात्। तत्रादिमो विज्ञानविषयो हि सर्वेभ्यो मुख्योस्ति। तस्य परमेश्वरादारभ्य तृणपर्य्यन्तपदार्थेषु साक्षाद्बोधान्वयत्वात्। तत्रापीश्वरानुभवो मुख्योस्ति। कुतः। अत्रैव सर्वेषां वेदानां तात्पर्यमस्तीश्वरस्य खलु सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः प्रधानत्वात्। अत्र प्रमाणानि। सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥ कठोपनि० वल्ली २। मं० १५॥ तस्य वाचकः प्रणवः। योगशास्त्रे, अ० १। पा० १। सू० २७॥ ओ३म् खं ब्रह्म॥ यजुः अ० ४०॥ ओमिति ब्रह्म॥ तैत्तिरीयारण्यके, प्र० ७। अनु० ८॥ तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते॥ १॥ यत्तदद्रेश्य[1]मग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥ २॥ मुण्डकं १। खण्डे १। मं० ५। ६॥ एषामर्थः। (सर्वे वेदाः०) यत्परमं पदं मोक्षाख्यं परब्रह्मप्राप्तिलक्षणं सर्वानन्दमयं सर्वदुःखेतरदस्ति तदेवोंकारवाच्यमस्ति। (तस्य०) तस्येश्वरस्य प्रणव ओंकारो वाचकोस्ति, वाच्यश्चेश्वरः। (ओम्०) ओमिति परमेश्वरस्य नामास्ति, तदेव परं ब्रह्म सर्वे वेदा आमनन्ति आसमन्तादभ्यस्यन्ति, मुख्यतया प्रतिपादयन्ति, (तपांसि) सत्यधर्मानुष्ठानानि तपांस्यपि तदभ्यासपराण्येव सन्ति,

१ अद्रेश्यमित्युपनिषदि पाठः

(यदिच्छन्तो०) ब्रह्मचर्यग्रहणमुपलक्षणार्थं ब्रह्मचर्य्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्रमाचरणानि सर्वाणि तदेवामनन्ति, ब्रह्मप्राप्त्यभ्यासपराणि सन्ति । यद्ब्रह्मेच्छन्तो विद्वांसस्तस्मिन्नभ्यासमाना वदन्त्युपदिशन्ति च । हे नाचिकेतः ! अहं यमो यदीदृशं पदमस्ति तदेतत्ते तुभ्यं संग्रहेण संक्षेपेण ब्रवीमि ॥ १ ॥ (तत्रापरा०) वेदेषु द्वे विद्ये वर्त्तते अपरा परा चेति । तत्र यया पृथिवीतृणमारभ्य प्रकृतिपर्यन्तानां पदार्थानां ज्ञानेन यथावदुपकारग्रहणं क्रियते सा अपरोच्यते । यया चादृश्यादिविशेषणयुक्तं सर्वशक्तिमद् ब्रह्म विज्ञायते सा पराऽर्थादपरायाः सकाशादत्युत्कृष्टास्तीति वेद्यम् ।

भाषार्थ

अब वेदों के नित्यत्वविचार के उपरान्त वेदों में कौन २ विषय किस २ प्रकार के हैं इस का विचार किया जाता है । वेदों में अवयवरूप विषय तो अनेक हैं परन्तु उन में से चार मुख्य हैं (१) एक विज्ञान अर्थात् सब पदार्थों को यथार्थ जानना, (२) दूसरा कर्म, (३) तीसरा उपासना और (४) चौथा ज्ञान है । विज्ञान उस को कहते हैं कि जो कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों से यथावत् उपयोग लेना और परमेश्वर से लेके तृणपर्य्यन्त पदार्थों का साक्षाद्बोध का होना, उनसे यथावत् उपयोग का करना । इससे यह विषय इन चारों में भी प्रधान है, क्योंकि इसी में वेदों का मुख्य तात्पर्य्य है । सो भी दो प्रकार का है, एक तो परमेश्वर का यथावत् ज्ञान और उस की आज्ञा का बराबर पालन करना और दूसरा यह है कि उस के रचे हुए सब पदार्थों के गुणों को यथावत् विचार के उनसे कार्य सिद्ध करना अर्थात् ईश्वर ने कौन २ पदार्थ किस किस प्रयोजन के लिये रचे हैं । और इन दोनों में से भी ईश्वर का जो प्रतिपादन है सो ही प्रधान है । इस में आगे कठवल्ली आदि के प्रमाण लिखते हैं । (सर्वे वेदाः०) परमपद अर्थात् जिसका नाम मोक्ष है, जिस में परब्रह्म को प्राप्त हो के सदा सुख में ही रहना, जो सब आनन्दों से युक्त, सब दुःखों से रहित और सर्वशक्तिमान् परब्रह्म है, जिस के नाम (ओम्) आदि हैं, उसी में सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है । इस में योगसूत्र का भी प्रमाण है । (तस्य०) परमेश्वर का ही ओंकार नाम है । (ओम् खं०) तथा (ओमिति०) ओम् और खं ये दोनों ब्रह्म के नाम हैं और उसी की प्राप्ति कराने में सब वेद प्रवृत्त हो रहे हैं, उस की प्राप्ति के आगे किसी पदार्थ की प्राप्ति उत्तम नहीं है, क्योंकि जगत् का वर्णन, दृष्टान्त और उपयो-

गादि का करना ये सब परब्रह्म को ही प्रकाशित करते हैं, तथा सत्य धर्म के अनुष्ठान जिन को तप कहते हैं वे भी परमेश्वर की ही प्राप्ति के लिये हैं, तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के सत्याचरणरूप जो कर्म हैं वे भी परमेश्वर की ही प्राप्ति कराने के लिये हैं, जिस ब्रह्म की प्राप्ति की इच्छा करके विद्वान् लोग प्रयत्न और उसी का उपदेश भी करते हैं। नचिकेता और यम इन दोनों का परस्पर यह संवाद है कि हे नचिकेतः! जो अवश्य प्राप्त करने के योग्य परब्रह्म है उसी का मैं तेरे लिये संक्षेप से उपदेश करता हूं। और यहां यह भी जानना उचित है कि अलंकाररूप कथा से नचिकेता नाम से जीव और यम से अन्तर्य्यामी परमात्मा को समझना चाहिये। (तत्रापरा०) वेदों में दो विद्या हैं एक अपरा, दूसरी परा। इन में से अपरा यह है कि जिस से पृथिवी और तृण से ले के प्रकृतिपर्य्यन्त पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक २ कार्य्य सिद्ध करना होता है और दूसरी परा कि जिससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की यथावत् प्राप्ति होती है। यह परा विद्या अपरा विद्या से अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि अपरा का ही उत्तम फल पराविद्या है।

अन्यच्च। तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥ १ ॥ ऋग्वेदे। अष्टके १। अध्याये २। वर्गे ७। मन्त्रः ५ ॥ अस्यायमर्थः। यत् (विष्णोः) व्यापकस्य परमेश्वरस्य, (परमं) प्रकृष्टानन्दस्वरूपं, (पदं) पदनीयं सर्वोत्तमोपायैर्मनुष्यैः प्रापणीयं मोक्षाख्यमस्ति, तत् (सूरयः) विद्वांसः सदा सर्वेषु कालेषु पश्यन्ति, कीदृशं तत् (आततम्) आसमन्तात्ततं विस्तृतं, यद्देशकालवस्तुपरिच्छेदरहितमस्ति, अतः सर्वैः सर्वत्र तदुपलभ्यते, तस्य ब्रह्मस्वरूपस्य विभुत्वात्। कस्यां किमिव ? (दिवीव चक्षुराततम्) दिवि मार्त्तण्डप्रकाशे नेत्रदृष्टेर्व्याप्तिर्यथा भवति तथैव तत्पदं ब्रह्मापि वर्त्तते, मोक्षस्य च सर्वस्मादधिकोत्कृष्टत्वात् तदेव द्रष्टुं प्राप्तुमिच्छन्ति। अतो वेदा विशेषेण तस्यैव प्रतिपादनं कुर्वन्ति। एतद्विषयकं वेदान्तसूत्रं व्यासोप्याह। तत्तु समन्वयात् ॥ अ० १। पा० १। सू० ४ ॥ अस्यायमर्थः। तदेव ब्रह्म सर्वत्र वेदवाक्येषु समन्वितं प्रतिपादितमस्ति। क्वचित्साक्षात्क्वचित्परम्परया च। अतः परमोर्थो वेदानां ब्रह्मवास्ति। तथा यजुर्वेदे प्रमाणम्। यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी॥ य० अ० ८। मं० ३६ ॥ एतस्यार्थः। (यस्मात्) नैव परब्रह्मणः सकाशात्

(परः) उत्तमः पदार्थः (जातः) प्रादुर्भूतः प्रकटः (अन्यः) भिन्नः कश्चिद-प्यस्ति, (प्रजापतिः) प्रजापतिरिति ब्रह्मणो नामास्ति प्रजापालकत्वात्, (य आवि-वेश भु०) यः परमेश्वरः (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (भुवनानि) सर्वलोकान् (आविवेश) व्याप्तवानस्ति, (सꣳरराणः) सर्वप्राणिभ्योऽत्यन्तं सुखं दत्तवान् सन् (त्रीणि ज्योतीꣳषि) त्रीण्यग्निसूर्यविद्युदाख्यानि सर्वजगत्प्रकाशकानि (प्रजया) ज्योतिषोऽन्यया सृष्ट्या सह तानि (सचते) समवेतानि करोति कृतवानस्ति, (सः) अतः स एवेश्वरः (षोडशी) येन षोडशकला जगति रचितास्ता विद्यन्ते यस्मि-न्यस्य वा तस्मात्स षोडशीत्युच्यते । अतोऽयमेव परमोर्थो वेदितव्यः ॥ ओमित्ये-तदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम् ॥ इदं माण्डूक्योपनिषद्वचनमस्ति । अस्या-यमर्थः । ओमित्येतद्यस्य नामास्ति तदक्षरम् । यन्न क्षीयते कदाचिद्यच्चराचरं जगदश्नुते व्याप्नोति तद्ब्रह्मैवास्तीति विज्ञेयम् । अस्यैव सर्ववेदादिभिः शास्त्रैः सकलेन जगता वोपगतं व्याख्यानं मुख्यतया क्रियतेतोऽयं प्रधानविषयोस्तीत्यव-धार्य्यम् । किं च नैव प्रधानस्याग्रेऽप्रधानस्य ग्रहणं भवितुमर्हति । प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्य्यसम्प्रत्यय इति व्याकरणमहाभाष्यवचनप्रामाण्यात् । एवमेव सर्वेषां वेदानामीश्वरे मुख्यर्थे मुख्यतात्पर्यमस्ति । तत्प्राप्तिप्रयोजना एव सर्वे उपदेशाः सन्ति । अतस्तदुपदेशपुरःसरेणैव त्रयाणां कर्मोपासनाज्ञानकाण्डानां पारमार्थिक-व्यावहारिकफलसिद्धये यथायोग्योपकाराय चानुष्ठानं सर्वैर्मनुष्यैर्यथावत्कर्त्तव्यमिति ।

भाषार्थ

और भी इस विषय में ऋग्वेद का प्रमाण है कि (तद्वि०)। (विष्णुः) अर्थात् व्यापक जो परमेश्वर है उस का (परमं) अत्यन्त उत्तम आनन्दस्वरूप (पदं) जो प्राप्ति होने के योग्य अर्थात् जिस का नाम मोक्ष है उस को (सूरयः) विद्वान् लोग (सदा पश्यन्ति) सब काल में देखते हैं । वह कैसा है कि सब में व्याप्त हो रहा है और उस में देश काल और वस्तु का भेद नहीं है अर्थात् उस देश में है और इस देश में नहीं तथा उस काल में था और इस काल में नहीं, उस वस्तु में है और इस वस्तु में नहीं, इसी कारण से वह पद सब जगह में सब को प्राप्त होता है, क्योंकि वह ब्रह्म सब ठिकाने परिपूर्ण है । इस में यह दृष्टान्त है कि (दिवीव चक्षुराततम्) जैसे सूर्य का प्रकाश आवरणरहित आकाश में व्याप्त होता है और जैसे उस प्रकाश में नेत्र की दृष्टि व्याप्त होती है इसी प्रकार परब्रह्म पद भी

स्वयंप्रकाश, सर्वत्र व्याप्तवान् हो रहा है । उस पद की प्राप्ति से कोई भी प्राप्ति उत्तम नहीं है । इसलिये चारों वेद उसी की प्राप्ति कराने के लिये विशेष करके प्रतिपादन कर रहे हैं । इस विषय में वेदान्तशास्त्र में व्यासमुनि के सूत्र का भी प्रमाण है (तत्तु-समन्वयात्) । सब वेद-वाक्यों में ब्रह्म का ही विशेष करके प्रतिपादन है । कहीं २ साक्षात्रूप और कहीं २ परम्परा से । इसी कारण से वह परब्रह्म वेदों का परम अर्थ है । तथा इस विषय में यजुर्वेद का भी प्रमाण है कि (यस्मान्न जा०) । जिस पर-ब्रह्म से (अन्यः) दूसरा कोई भी (परः) उत्तम पदार्थ (जातः) प्रकट (नास्ति) अर्थात् नहीं है, (य आविवेश भु०) जो सब विश्व अर्थात् सब जगह में व्याप्त हो रहा है, (प्रजापतिः प्र०) वही सब जगत् का पालनकर्त्ता और अध्यक्ष है, जिस ने (त्रीणि ज्योतीᳩषि) अग्नि सूर्य बिजुली इन तीन ज्योतियों को प्रजा के प्रकाश होने के लिये (सचते) रचके संयुक्त किया है और जिस का नाम (षोडशी) है, अर्थात् (१) ईक्षण जो यथार्थविचार (२) प्राण जो कि सब विश्व का धारण करनेवाला (३) श्रद्धा सत्य में विश्वास (४) आकाश (५) वायु (६) अग्नि (७) जल (८) पृथिवी (९) इन्द्रिय (१०) मन अर्थात् ज्ञान (११) अन्न (१२) वीर्य अर्थात् बल और पराक्रम (१३) तप अर्थात् धर्म्मानुष्ठान सत्याचार (१४) मन्त्र अर्थात् वेदविद्या (१५) कर्म अर्थात् सब चेष्टा (१६) नाम अर्थात् दृश्य और अदृश्य पदार्थों की संज्ञा, ये ही सोलह कला कहाती हैं । ये सब ईश्वर ही के बीच में हैं इससे उसको षोडशी कहते हैं । इन षोडश कलाओं का प्रतिपादन प्रश्नोपनिषद् के (६) छठे प्रश्न में लिखा है । इससे परमेश्वर ही वेदों का मुख्य अर्थ है और उससे पृथक् जो यह जगत् है सो वेदों का गौण अर्थ है । और इन दोनों में से प्रधान का ही ग्रहण होता है । इससे क्या आया कि वेदों का मुख्य तात्पर्य परमेश्वर ही के प्राप्त कराने और प्रतिपादन करने में है । उस परमेश्वर के उपदेशरूप वेदों से कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों काण्डों का इस लोक और परलोक के व्यवहारों के फलों की सिद्धि और यथावत् उपकार करने के लिये सब मनुष्य इन चार विषयों के अनुष्ठानों में पुरुषार्थ करें, यही मनुष्यदेह धारण करने के फल हैं।

तत्र द्वितीयो विषयः कर्मकाण्डाख्यः, स सर्वः क्रियामयोऽस्ति । नैतेन विना विद्याभ्यासज्ञाने अपि पूर्णे भवतः । कुतः । बाह्यमानसव्यवहारयोर्बाह्याभ्यन्तरे युक्तत्वात् । स चानेकविधोऽस्ति । परन्तु तस्यापि खलु द्वौ भेदौ मुख्यौ स्तः ।

एकः परमपुरुषार्थसिद्ध्यर्थोऽर्थाद् ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाज्ञापालनधर्मानुष्ठानज्ञानेन मोक्षमेव साधयितुं प्रवर्त्तते । अपरो लोकव्यवहारसिद्धये यो धर्मेणार्थकामौ निवर्त्तयितुं संयोज्यते । स यदा परमेश्वरस्य प्राप्तिमेव फलमुद्दिश्य क्रियते तदाऽयं श्रेष्ठफलापन्नो निष्कामसंज्ञां लभते । अस्य खल्वनन्तसुखेन योगात् । यदा चार्थकामफलसिद्ध्यवसानो लौकिकसुखाय योज्यते तदा सोऽपरः सकाम एव भवति । अस्य जन्ममरणफलभोगेन युक्तत्वात् । स चाग्निहोत्रमारभ्याश्वमेधपर्यन्तेषु यज्ञेषु सुगन्धिमिष्टपुष्टरोगनाशकगुणैर्युक्तस्य सम्यक् संस्कारेण शोधितस्य द्रव्यस्य वायुवृष्टिजलशुद्धिकरणार्थमग्नौ होमः क्रियते स तद्द्वारा सर्वजगत्सुखकार्य्येव भवति । यं च भोजनाच्छादनयानकलाकौशलयंत्रसामाजिकनियमप्रयोजनसिद्ध्यर्थं विधत्ते सोऽधिकतया स्वसुखायैव भवति ।

भाषार्थ

उन में से दूसरा कर्मकाण्ड विषय है सो सब क्रियाप्रधान ही होता है । जिस के विना विद्याभ्यास और ज्ञान पूर्ण नहीं हो सकते । क्योंकि मन का योग बाहर की क्रिया और भीतर के व्यवहार में सदा रहता है । वह अनेक प्रकार का है परन्तु उस के दो भेद मुख्य हैं । एक परमार्थ, दूसरा लोकव्यवहार अर्थात् पहिले से परमार्थ और दूसरे से लोकव्यवहार की सिद्धि करनी होती है । प्रथम जो परमपुरुषार्थरूप कहा उस में परमेश्वर की (स्तुति) अर्थात् उस के सर्वशक्तिमत्त्वादि गुणों का कीर्त्तन, उपदेश और श्रवण करना, (प्रार्थना) अर्थात् जिस करके ईश्वर से सहायता की इच्छा करनी, (उपासना) अर्थात् ईश्वर के स्वरूप में मग्न होके उसकी सत्यभाषणादि आज्ञा का यथावत् पालन करना, सो उपासना वेद और पातञ्जलयोगशास्त्र की रीति से ही करनी चाहिये । तथा धर्म का स्वरूप न्यायाचरण है । न्यायाचरण उसको कहते हैं जो पक्षपात को छोड़ के सब प्रकार से सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करना । इसी धर्म का जो ज्ञान और अनुष्ठान का यथावत् करना है । सो ही कर्मकाण्ड का प्रधान भाग है और दूसरा यह है कि जिससे पूर्वोक्त अर्थ, काम और उनकी सिद्धि करने वाले साधनों की प्राप्ति होती है । सो इस भेद को इस प्रकार से जानना कि जब मोक्ष अर्थात् सब दुःखों से छूट के केवल परमेश्वर की ही प्राप्ति के लिये धर्म से युक्त सब कर्मों का यथावत् करना यही निष्काम मार्ग कहाता है, क्योंकि इस में संसार के भोगों की कामना नहीं की जाती । इसी कारण से इस का फल अक्षय है ।

और जिसमें संसार के भोगों की इच्छा से धर्मयुक्त काम किये जाते हैं उसको सकाम कहते हैं। इस हेतु से इस का फल नाशवान् होता है, क्योंकि सब कर्मों करके इन्द्रिय भोगों को प्राप्त हो के जन्म मरण से नहीं छूट सकता। सो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेधपर्यन्त जो कर्मकाण्ड है उसमें चार प्रकार के द्रव्यों का होम करना होता है। एक सुगन्ध गुणयुक्त जो कस्तूरी केशरादि हैं, दूसरा मिष्टगुणयुक्त जो कि गुड़ और सहत आदि कहाते हैं, तीसरा पुष्टिकारकगुणयुक्त जो कि घृत, दुग्ध और अन्न आदि हैं और चौथा रोगनाशकगुणयुक्त जो कि सोमलतादि ओषधि आदि हैं। इन चारों का परस्पर शोधन, संस्कार और यथायोग्य मिला के अग्नि में युक्तिपूर्वक जो होम किया जाता है वह वायु और वृष्टिजल की शुद्धि करने वाला होता है। इससे सब जगत् को सुख होता है। और जिस को भोजन, छादन, विमानादि यान, कलाकुशलता, यन्त्र और सामाजिक नियम होने के लिये करते हैं वह अधिकांश से कर्त्ता को ही सुख देने वाला होता है।

अत्र पूर्वमीमांसायाः प्रमाणम्। द्रव्यसंस्कारकर्मसु परार्थत्वात्फलश्रुतिरर्थवादः स्यात् ॥ अ० ४। पा० ३। सू० १ ॥ द्रव्याणां तु क्रियार्थानां संस्कारः क्रतुधर्मः स्यात् ॥ अ० ४। पा० ३। सू० ८ ॥ अनयोरर्थः। द्रव्यं संस्कारः कर्म चैतत्त्रयं यज्ञकर्त्रा कर्त्तव्यम्। द्रव्याणि पूर्वोक्तानि चतुःसंख्याकानि सुगन्धादिगुणयुक्तान्येव गृहीत्वा तेषां परस्परमुत्तमोत्तमगुणसंपादनार्थं संस्कारः कर्त्तव्यः। यथा सूपादीनां संस्कारार्थं सुगन्धयुक्तं घृतं चमसे संस्थाप्याग्नौ प्रतप्य सधूमे जाते सति तं सूपपात्रे प्रवेश्य तन्मुखं बद्ध्वा प्रचालयेच्च तदा यः पूर्वं धूमवद्बाष्प उत्थितः स सर्वः सुगन्धो हि जलं भूत्वा प्रविष्टः सन्सर्वं सूपं सुगन्धमेव करोति तेन पुष्टिरुचिकरश्च भवति। तथैव यज्ञाद्यो बाष्पो जायते स वायुं वृष्टिजलं च निर्दोषं कृत्वा सर्वजगते सुखायैव भवति। अतश्चोक्तम्। यज्ञोपि तस्यै जनतायै कल्पते यत्रैवं विद्वान् होता भवति ॥ ऐ० ब्रा० मं० १। अ० २ ॥ जनानां समूहो जनता तत्सुखायैव यज्ञो भवति यस्मिन्यज्ञेऽमुना प्रकारेण विद्वान् संस्कृतद्रव्याणामग्नौ होमं करोति। कुतः। तस्य परार्थत्वात्। यज्ञः परोपकारायैव भवति। अतएव फलस्य श्रुतिः श्रवणमर्थवादोऽनर्थवारणाय भवति। तथैव होमक्रियार्थानं द्रव्याणां पुरुषाणां च यः संस्कारो भवति स एव क्रतुधर्मो बोध्यः। एवं क्रतुना यज्ञेन धर्मो जायते नान्यथेति।

भाषार्थ

इस में पूर्वमीमांसा धर्मशास्त्र की भी सम्मति है (द्रव्य०) । एक तो द्रव्य, दूसरा संस्कार और तीसरा उन का यथावत् उपयोग करना ये तीनों बात यज्ञ के कर्त्ता को अवश्य करना चाहिये । सो पूर्वोक्त सुगन्धादियुक्त चार प्रकार के द्रव्यों का अच्छी प्रकार संस्कार करके अग्नि में होम करने से जगत् का अत्यन्त उपकार होता है । जैसे दाल और शाक आदि में सुगन्धद्रव्य और घी इन दोनों को चमचे में अग्नि पर तपा के उन में छोंक देने से वे सुगन्धित होजाते हैं, क्योंकि उस सुगन्ध द्रव्य और घी के अणु उनको सुगन्धित करके दाल आदि पदार्थों को पुष्टि और रुचि बढ़ाने वाले कर देते हैं, वैसे ही यज्ञ से जो भाफ उठता है वह भी वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जगत् को सुख करता है । इससे वह यज्ञ परोपकार के लिये ही होता है । इसमें ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है कि (यज्ञोपि त०)। अर्थात् जनता नाम जो मनुष्यों का समूह है उसी के सुख के लिये यज्ञ होता है और संस्कार किये द्रव्यों का होम करने वाला जो विद्वान् मनुष्य है वह भी आनन्द को प्राप्त होता है, क्योंकि जो मनुष्य जगत् का जितना उपकार करेगा उसको उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा। इसलिये यज्ञ का अर्थवाद * यह है कि अनर्थ दोषों को हटा के जगत् में आनन्द को बढ़ाता है । परन्तु होम के द्रव्यों का उत्तम संस्कार और होम के करने वाले मनुष्यों को होम करने की श्रेष्ठ विद्या अवश्य होनी चाहिये । सो इसी प्रकार के यज्ञ करने से सबको उत्तम फल प्राप्त होता है, विशेष करके यज्ञकर्त्ता को, अन्यथा नहीं ।

अत्र प्रमाणम् । अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिरग्नेर्वा एता जायन्ते तस्मादाह तपोजा इति ॥ श० कां० ५ । अ० ३ ॥ अस्यायमभिप्रायः । अग्नेः सकाशाद्धूमवाष्पौ जायेते यदाऽयमग्निर्वृक्षौषधिवनस्पतिजलादिपदार्थान्प्रविश्य तान्संहतान् विभिद्य तेभ्यो रसं च पृथक् करोति । पुनस्ते लघुत्वमापन्ना वाय्वाधारेणोपर्य्याकाशं गच्छन्ति । तत्र यावान् जलरसांशस्तावतो वाष्पसंज्ञास्ति । यश्च निःस्नेहो भागः स पृथिव्यंशोऽस्ति । अतएवोभयभागयुक्तो धूमइत्युपचर्य्यते । पुनर्धूमगमनानन्तरमाकाशे जलसंचयो भवति । तस्मादभ्रं घना जायन्ते । तेभ्यो वायु-

* इस शब्द का अर्थ आगे वेदसंज्ञा प्रकरण में लिखा जायगा

दलेभ्यो वृष्टिर्जायते । अतोऽग्नेरेवैता यवादय ओषधयो जायन्ते ताभ्योऽन्नमन्नाद्वीर्यं वीर्य्याच्छरीराणि भवन्तीति ।

भाषार्थ

इस में शतपथ ब्राह्मण का भी प्रमाण है, कि (अग्ने०) । जो होम करने के द्रव्य अग्नि में डाले जाते हैं उन से धुआं और भाफ उत्पन्न होते हैं, क्योंकि अग्नि का यही स्वभाव है कि पदार्थों में प्रवेश करके उन को भिन्न २ कर देता है, फिर वे हलके होके वायु के साथ ऊपर आकाश में चढ़ जाते हैं, उन में जितना जल का अंश है वह भाफ कहाता है और जो शुष्क है वह पृथ्वी का भाग है, इन दोनों के योग का नाम धूम है । जब वे परमाणु मेघमण्डल में वायु के आधार से रहते हैं फिर व परस्पर मिल के बादल होके उन से वृष्टि, वृष्टि से ओषधि, ओषधियों से अन्न, अन्न से धातु, धातुओं से शरीर और शरीर से कर्म बनता है ।

अत्र विषये तैत्तिरीयोपनिषद्यप्युक्तम् । तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्योऽन्नं अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः । आनन्दवल्ल्य * प्रथमेनुवाके ॥ स तपोतप्यत् तपस्तप्त्वा अन्नं ब्रह्मेति विजानात् † । अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते अन्नेन जातानि जीवन्ति अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति भृगुवल्ल्यां द्वितीयेऽनुवाके । अन्नं ब्रह्मेत्युच्यते जीवनस्य बृहद्धेतुत्वात् । शुद्धान्नजलवाय्वादिद्वारैव प्राणिनां सुखं भवति नातोन्यथेति ।

भाषार्थ

इस विषय में तैत्तिरीय उपनिषद् का भी प्रमाण है कि (तस्माद्वा०) । परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदि तत्व उत्पन्न हुए हैं और उन में ही पूर्वोक्त क्रम के अनुसार शरीर आदि उत्पत्ति, जीवन और प्रलय को प्राप्त होते हैं । यहां ब्रह्म का नाम अन्न और अन्न का नाम ब्रह्म भी है, क्योंकि जिस का जो कार्य है वह उसी में मिलता है । वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से जगत् की तीनों अवस्था होती हैं और सब जीवों के जीवन का मुख्य साधन है इससे अन्न को ब्रह्म कहते हैं । जब होम से वायु, जल और ओषधि आदि शुद्ध

* ब्रह्मवल्ल्यामेपपाठः, † उपनिषदि व्यजानादिति पाठः ॥

होते हैं तब सब जगत् को सुख और अशुद्ध होने से सब को दुःख होता है इस से इनकी शुद्धि अवश्य करनी चाहिये ।

तत्र द्विविधः प्रयत्नोस्तीश्वरकृतो जीवकृतश्च । ईश्वरेण खल्वग्निमयः सूर्य्यो निर्मितः सुगन्धपुष्पादिश्च । स निरन्तरं सर्वस्माज्जगतो रसानाकर्षति । तस्य सुगन्धदुर्गन्धाणुसंयोगत्वेन तज्जलवायू अपीष्टानिष्टगुणयोगान्मध्यगुणौ भवतस्तयोः सुगन्धदुर्गन्धामिश्रितत्वात् । तज्जलवृष्टावोषध्यन्नरेतः शरीराण्यपि मध्यमान्येव भवन्ति। तन्मध्यमत्वाद्बलबुद्धिवीर्य्यपराक्रमधैर्य्यशौर्य्यादयोपि गुणा मध्यमा एव जायन्ते । कुतः । यस्य यादृशं कारणमस्ति तस्य तादृशमेव कार्य्यं भवतीति दर्शनात् । अयं खल्वीश्वरसृष्टेर्दोषो नास्ति । कुतः । दुर्गन्धादिविकारस्य मनुष्यसृष्ट्यन्तर्भावात् । यतो दुर्गन्धादिविकारस्योत्पत्तिर्मनुष्यादिभ्य एव भवति तस्मादस्य निवारणमपि मनुष्यैरेव करणीयमिति । यथेश्वरेणाज्ञा दत्ता सत्यभाषणमेव कर्त्तव्यं नानृतमिति यस्तामुल्लङ्घ्य प्रवर्त्तते स पापीयान्भूत्वा क्लेशं चेश्वरव्यवस्थया प्राप्नोति । तथा यज्ञः कर्त्तव्य इतीयमप्याज्ञा तेनैव दत्तास्ति तामपि य उल्लङ्घयति सोपि पापीयान्सन् क्लेशवांश्च भवति ।

भाषार्थ

सो उन की शुद्धि करने में दो प्रकार का प्रयत्न है । एक तो ईश्वर का किया हुआ और दूसरा जीव का । उन में से ईश्वर का किया यह है कि उसने अग्निरूप सूर्य और सुगन्धरूप पुष्पादि पदार्थों को उत्पन्न किया है । वह सूर्य निरन्तर सब जगत् के रसों को पूर्वोक्त प्रकार से ऊपर खैंचता है और जो पुष्पादि का सुगन्ध है वह भी दुर्गन्ध को निवारण करता रहता है । परन्तु वे परमाणु सुगन्ध और दुर्गन्ध युक्त होने से जल और वायु को भी मध्यम कर देते हैं । उस जल की वृष्टि से ओषधि, अन्न, वीर्य और शरीर आदि भी मध्यम गुणवाले हो जाते हैं और उनके योग से बुद्धि, बल, पराक्रम, धैर्य और शूरवीरतादि गुण भी निकृष्ट ही होते हैं । क्योंकि जिस का जैसा कारण होता है उस का वैसा ही कार्य होता है । यह दुर्गन्ध से वायु और वृष्टि जल का दोषयुक्त होना सर्वत्र देखने में आता है । सो यह दोष ईश्वर की सृष्टि से नहीं किन्तु मनुष्यों ही की सृष्टि से होता है । इस कारण से उसका निवारण करना भी मनुष्यों ही को उचित है । जैसे ईश्वर ने सत्यभाषणादि धर्मव्यवहार करने की आज्ञा दी है मिथ्याभाषणादि की नहीं, जो इस आज्ञा

से उलटा काम करता है वह अत्यन्त पापी होता है, और ईश्वर की न्यायव्यवस्था से उसको क्लेश भी होता है, वैसे ही ईश्वर ने मनुष्यों को यज्ञ करने की आज्ञा दी है इसको जो नहीं करता वह भी पापी हो के दुःख का भागी होता है ।

कुतः । सर्वोपकाराकरणात् । यत्र खलु यावान्मनुष्यादिप्राणिसमुदायो भवति तत्र तावानेव दुर्गन्धसमुदायो जायते । न चैवायमीश्वरसृष्टिनिमित्तो भवितुमर्हति । कुतः । तस्य मनुष्यादिप्राणिसमुदायनिमित्तोत्पन्नत्वात् । यत्तु खलु मनुष्याः स्वसुखार्थं हस्त्यादिप्राणिनामेकत्र बाहुल्यं कुर्वन्ति, अतस्तज्जन्योऽप्यधिको दुर्गन्धो मनुष्यसुखेच्छानिमित्त एव जायते । एवं वायुवृष्टिजलदूषकः सर्वो दुर्गन्धो मनुष्यनिमित्तादेवोत्पद्यतेऽतस्तस्य निवारणमपि मनुष्या एव कर्तुमर्हन्ति ।

भाषार्थ

क्योंकि सब के उपकार करने वाले यज्ञ को नहीं करने से मनुष्यों को दोष लगता है । जहां जितने मनुष्य आदि के समुदाय अधिक होते हैं वहां उतना ही दुर्गन्ध भी अधिक होता है । वह ईश्वर की सृष्टि से नहीं, किन्तु मनुष्यादि प्राणियों के निमित्त से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि हस्ति आदि के समुदायों को मनुष्य अपने ही सुख के लिये इकट्ठा करते हैं, इससे उन पशुओं से भी जो अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होता है सो मनुष्यों के ही सुख की इच्छा से होता है, इससे क्या आया कि जब वायु और वृष्टिजल को बिगाड़ने वाला सब दुर्गन्ध मनुष्यों के ही निमित्त से उत्पन्न होता है तो उस का निवारण करना भी उन को ही योग्य है ।

तेषां मध्यान्मनुष्या एवोपकारानुपकारौ वेदितुमर्हाः सन्ति । मननं विचारस्तद्योगादेव मनुष्यत्वं जायते । परमेश्वरेण हि सर्वदेहधारिप्राणिनां मध्ये मनस्विनो विज्ञानं कर्तुं योग्या मनुष्या एव सृष्टास्तद्देहेषु परमाणुसंयोगविशेषेण विज्ञानभवनानुकूलानामवयवानामुत्पादितत्वात् । अतस्त एव धर्माधर्मयोर्ज्ञानमनुष्ठानाननुष्ठाने च कर्तुमर्हन्ति न चान्ये । अस्मात्कारणात्सर्वोपकाराय सर्वैर्मनुष्यैर्यज्ञः कर्तव्य एव ।

भाषार्थ

क्योंकि जितने प्राणी देहधारी जगत् में हैं उन में से मनुष्य ही उत्तम हैं इस से वे ही उपकार और अनुपकार को जानने को योग्य हैं । मनन नाम विचार का है, जिस के होने से ही मनुष्य नाम होता है, अन्यथा नहीं, क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य के

शरीर में परमाणु आदि के संयोगविशेष इस प्रकार के रचे हैं कि जिन से उन को ज्ञान की उन्नति होती है, इसी कारण से धर्म का अनुष्ठान और अधर्म का त्याग करने को भी वे ही योग्य होते हैं, अन्य नहीं। इससे सब के उपकार के लिये यज्ञ का अनुष्ठान भी उन्हीं को करना उचित है।

किंच भोः कस्तूर्य्यादीनां सुरभियुक्तानां द्रव्याणामग्नौ प्रक्षेपणेन विनाशात्कथमुपकाराय यज्ञो भवितुमर्हतीति। किन्त्वीदृशैरुत्तमैः पदार्थैर्मनुष्यादिभ्यो भोजनादिदानेनोपकारे कृते होमादप्युत्तमं फलं जायते पुनः किमर्थं यज्ञकरणमिति ? अत्रोच्यते। नात्यन्तो विनाशः कस्यापि संभवति। विनाशो हि यद्दृश्यं भूत्वा पुनर्न दृश्येतेति विज्ञायते। परन्तु दर्शनं त्वया कतिविधं स्वीक्रियते ?। अष्टविधं चेति। किंच तत् ?। अत्राहुर्गौतमाचार्य्या न्यायशास्त्रे। इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥ १ ॥ अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टं च ॥ २ ॥ प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम् ॥ ३ ॥ आप्तोपदेशः शब्दः ॥ ४ ॥ अ० १। आह्निकम् १। सू० ४। ५। ६। ७॥ प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावसाधनभेदादष्टधाप्रमाणं मया मन्यत इति। तत्र यदिन्द्रियार्थसम्बन्धात्सत्यमव्यभिचारिज्ञानमुत्पद्यते तत्प्रत्यक्षम्। सन्निकटे दर्शनान्मनुष्योयं नान्य इत्याद्युदाहरणम् ॥ १ ॥ यत्र लिङ्गज्ञानेन लिङ्गिनो ज्ञानं जायते तदनुमानम्। पुत्रं दृष्ट्वाऽऽसीदस्य पितेत्याद्युदाहरणम् ॥ २ ॥ उपमानं सादृश्यज्ञानं यथा देवदत्तोस्ति तथैव यज्ञदत्तोप्यस्तीति साधर्म्यादुपदिशतीत्याद्युदाहरणम् ॥ ३ ॥ शब्द्यते प्रत्याय्यते दृष्टोऽदृष्टश्चार्थो येन स शब्दः। ज्ञानेन मोक्षो भवतीत्याद्युदाहरणम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ

प्र०—सुगन्धयुक्त जो कस्तूरी आदि पदार्थ हैं उन को अन्य द्रव्यों में मिला के अग्नि में डालने से उनका नाश होजाता है फिर यज्ञ से किसी प्रकार का उपकार नहीं हो सकता किन्तु ऐसे उत्तम २ पदार्थ मनुष्यों को भोजनादि के लिये देने से होम से भी अधिक उपकार हो सकता है फिर यज्ञ करना किसलिये चाहिये ? उ०—किसी पदार्थ का विनाश नहीं होता केवल वियोगमात्र होता है, परन्तु यह तो कहिये कि आप विनाश किसको कहते हैं ? उ०—जो स्थूल होके प्रथम देखने में आकर फिर न देख पड़े उसको हम विनाश कहते हैं। प्र०—आप कितने प्रकार का दर्शन

मानते हैं ? उ०—आठ प्रकार का । प्र०—कौन २ से ? उ०—प्रत्यक्ष १, अनुमान २, उपमान ३, शब्द ४, ऐतिह्य ५, अर्थापत्ति ६, सम्भव ७ और अभाव ८, इस भेद से हम आठ प्रकार का दर्शन मानते हैं । (इन्द्रियार्थ०) इन में से प्रत्यक्ष उसको कहते हैं कि जो चक्षु आदि इन्द्रिय और रूप आदि विषयों के सम्बन्ध से सत्यज्ञान उत्पन्न हो, जैसे दूर से देखने में संदेह हुआ कि वह मनुष्य है वा कुछ और फिर उस के समीप होने से निश्चय होता है कि यह मनुष्य ही है अन्य नहीं इत्यादि प्रत्यक्ष के उदाहरण हैं ॥ १ ॥ (अथ तत्पू०) और जो किसी पदार्थ के चिह्न देखने से उसी पदार्थ का यथावत् ज्ञान हो वह अनुमान कहाता है, जैसे किसी के पुत्र को देखने से ज्ञान होता है कि इस के माता पिता आदि हैं वा अवश्य थे इत्यादि उसके उदाहरण हैं ॥ २ ॥ (प्रसिद्ध०) तीसरा उपमान कि जिससे किसी का तुल्य धर्म देख के समान धर्मवाले का ज्ञान हो, जैसे किसी ने किसी से कहा कि जिस प्रकार का यह देवदत्त है उसी प्रकार का वह यज्ञदत्त भी है, उस के पास जाके इस काम को कर ला, इस प्रकार के तुल्य धर्म से जो ज्ञान होता है उसको उपमान कहते हैं ॥ ३ ॥ (आप्तोप०) चौथा शब्दप्रमाण है कि जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अर्थ का निश्चय करानेवाला है, जैसे ज्ञान से मोक्ष होता है यह आप्तों के उपदेश शब्दप्रमाण का उदाहरण है ॥ ४ ॥

न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात् ॥ ५ ॥ शब्द ऐतिह्यानर्थान्तरभावादनुमानेऽर्थापत्तिसम्भवाभावानर्थान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः ॥ ६ ॥ अ० २ । आ० २ । सू० १ । २ ॥ न चतुष्ट्वमिति सूत्रद्वयस्य संक्षिप्तोर्थः क्रियते । (ऐतिह्यं) शब्दोपगतमाप्तोपदिष्टं ग्राह्यम् । देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादि ॥५॥ (अर्थापत्तिः) अर्थादापद्यते सार्थापत्तिः, केनचिदुक्तं सत्सु घनेषु वृष्टिर्भवतीति । किमत्र प्रसज्यते ? असत्सु घनेषु न भवतीत्याद्युदाहरणम् ॥ ६ ॥ (सम्भवः) सम्भवति येन यस्मिन्वा स सम्भवः, केनचिदुक्तं मातापितृभ्यां सन्तानं जायते, सम्भवोस्तीति वाच्यम् । परन्तु कश्चिद्ब्रूयात्कुम्भकर्णस्य क्रोशचतुष्टयपर्यन्तं श्मश्रुणः केशा ऊर्ध्वं स्थिता आसन्, षोडशक्रोशमूर्ध्वं नासिका चासम्भवत्वान्मिथ्यैवास्तीति विज्ञायते, इत्याद्युदाहरणम् ॥ ७ ॥ (अभावः) कोपि ब्रूयाद् घटमानयेति स तत्र घटमपश्यन्नत्र घटो नास्तीत्यभावलक्षणेन यत्र घटो वर्त्तमानस्तस्मादानीयते ॥ ८ ॥ इति प्रत्यक्षादीनां संक्षेपतोर्थः । एवमष्टविधं दर्शनमर्थाज्ज्ञानं

यथा मन्यते । सत्यमेवमेतत् । नैवमङ्गीकारेण विना समग्रौ व्यवहारपरमार्थौ कस्यापि सिध्येताम् ।

भाषार्थ

(ऐतिह्यम्) सत्यवादी विद्वानों के कहे वा लिखे उपदेश का नाम इतिहास है, जैसा देव और असुर युद्ध करने के लिये तत्पर हुए थे । जो यह इतिहास ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणादि सत्य ग्रन्थों में लिखा है उसी का ग्रहण होता है, अन्य का नहीं । यह पांचवां प्रमाण है ।। ५ ।। और छठा (अर्थापत्तिः), जो एक बात किसी ने कही हो उससे विरुद्ध दूसरी बात समझी जावे, जैसे किसी ने कहा कि बादलों के होने से वृष्टि होती है दूसरे ने इतने ही कहने से जान लिया कि बादलों के विना वृष्टि कभी नहीं हो सकती, इस प्रकार के प्रमाण से जो ज्ञान होता है उस को अर्थापत्ति कहते हैं ।। ६ ।। सातवां (संभवः), जैसे किसी ने किसी से कहा कि माता पिता से सन्तानों की उत्पत्ति होती है तो दूसरा मान ले कि इस बात का तो संभव है, परन्तु जो कोई ऐसा कहे कि रावण के भाई कुम्भकरण की मूंछ चार कोश तक आकाश में ऊपर खड़ी रहती थी और उस की नाक (१६) सोलह कोश पर्यन्त लम्बी चौड़ी थी उस की यह बात मिथ्या समझी जायगी, क्योंकि ऐसी बात का संभव कभी नहीं हो सकता ।। ७ ।। और आठवां (अभावः), जैसे किसी ने किसी से कहा कि तुम घड़ा ले आओ और जब उसने वहां नहीं पाया तब वह जहां पर घड़ा था वहां से ले आया ।। ८ ।। इन आठ प्रकार के प्रमाणों को मैं मानता हूं । यहां इन आठों का अर्थ संक्षेप से किया है * । उ०—यह बात सत्य है कि इन के विना माने सम्पूर्ण व्यवहार और परमार्थ किसी का सिद्ध नहीं हो सकता । इससे इन आठों को हम लोग भी मानते हैं ।

यथा कश्चिदेकं मृत्पिण्डं विशेषतश्चूर्णीकृत्य वेगयुक्ते वायौ बाहुवेगेनाकाशं प्रतिक्षिपेत्तस्य नाशो भवतीत्युपचर्य्यते । चक्षुषा दर्शनाभवात् । (णश्) अदर्शने अस्माद् घञ्प्रत्यये कृते नाश इति शब्दः सिध्यति । अतो नाशो बाह्येन्द्रियाऽद्-र्शनमेव भवितुमर्हति । किंच यदा परमाणवः पृथक् २ भवन्ति तदा ते चक्षुषा नैव दृश्यन्ते तेषामतीन्द्रियत्वात् । यदा चैते मिलित्वा स्थूलभावमापद्यन्ते तदैव

---

* कहीं २ शब्द में ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति, संभव और अभाव को मानने से ४ (चार) प्रमाण रहते हैं ।

तद्द्रव्यं दृष्टिपथमागच्छति, स्थूलस्यैन्द्रियकत्वात् । यद्द्रव्यं विभक्तं विभक्तमन्ते विभागानर्हं भवति तस्य परमाणुसंज्ञा चेति व्यवहारः, ते हि विभक्ता अतीन्द्रियाः सन्त आकाशे वर्त्तन्त एव ।

भाषार्थ

नाश को समझने के लिये यह दृष्टान्त है कि कोई मनुष्य मट्टी के ढेले को पीस के वायु के बीच में बल से फेंक दे फिर जैसे वे छोटे २ कण आंख से नहीं दीखते, क्योंकि (णश्) धातु का अदर्शन ही अर्थ है, जब अणु अलग २ हो जाते हैं तब वे देखने में नहीं आते, इसी का नाम नाश है । और जब परमाणु के संयोग से स्थूल द्रव्य अर्थात् बड़ा होता है तब वह देखने में आता है । और परमाणु इसको कहते हैं कि जिसका विभाग फिर कभी न हो सके । परन्तु यह बात केवल एकदेशी है, क्योंकि उसका भी ज्ञान से विभाग हो सकता है । जिसकी परिधि और व्यास बन सकता है उसका भी टुकड़ा हो सकता है । यहांतक कि जब पर्य्यन्त वह एकरस न हो जाय तब पर्य्यन्त ज्ञान से बराबर कटता ही चला जायगा ।

तथैवाग्नौ यद्द्रव्यं प्रक्षिप्यते तद्विभागं प्राप्य देशान्तरे वर्त्तत एव, न हि तस्याभावः कदाचिद्भवति । एवं यद्दुर्गन्धादिदोषनिवारकं सुगन्धादि द्रव्यमस्ति तच्चाग्नौ हुतं सद्वायोर्वृष्टिजलस्य शुद्धिकरं भवति । तस्मिन्निर्दोषे सति सृष्टये महान्सुपकारो भवति सुखं चातःकारणाद्यज्ञः कर्त्तव्य एवेति । किंच भोः । वायुवृष्टिजलशुद्धिकरणमेव यज्ञस्य प्रयोजनमस्ति चेर्त्ताहि गृहाणां मध्ये सुगन्धद्रव्यरक्षणेनैतत्सेत्स्यति पुनः किमर्थमेतावानाडम्बरः ? । नैवं शक्यम् । नैव तेनाशुद्धो वायुः सूक्ष्मो भूत्वाऽऽकाशं गच्छति, तस्य पृथक्त्वलघुत्वाभावात् । तत्र तस्य स्थितौ सत्यां नैव बाह्यो वायुरागन्तुं शक्नोत्यवकाशाभावात् । तत्र पुनः सुगन्धदुर्गन्धयुक्तस्य वायोर्वर्त्तमानत्वादारोग्यादिकं फलमपि भवितुमशक्यमेवास्ति ।

भाषार्थ

वैसे ही जो सुगन्ध आदि युक्त द्रव्य अग्नि में डाला जाता है उसके अणु अलग २ हो के आकाश में रहते ही हैं, क्योंकि किसी द्रव्य का वस्तुता से अभाव नहीं होता । इस से वह द्रव्य दुर्गन्धादि दोषों का निवारण करने वाला अवश्य होता है । फिर उससे वायु और वृष्टिजल की शुद्धि के होने से जगत् का बड़ा

उपकार और सुख अवश्य होता है। इस कारण से यज्ञ को करना ही चाहिये। प्र०—जो यज्ञ से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि करनामात्र ही प्रयोजन है तो इस की सिद्धि अतर और पुष्पादि के घरों में रखने से भी हो सकती है, फिर इतना बड़ा परिश्रम यज्ञ में क्यों करना ? उ०—यह कार्य्य अन्य किसी प्रकार से सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि अतर और पुष्पादि का सुगन्ध तो उसी दुर्गन्ध वायु में मिल के रहता है, उस को छेदन करके बाहर नहीं निकाल सकता और न वह ऊपर चढ़ सकता है, क्योंकि उस में हलकापन नहीं होता। उसके उसी अवकाश में रहने से बाहर का शुद्ध वायु उस ठिकाने में जा भी नहीं सकता, क्योंकि खाली जगह के बिना दूसरे का प्रवेश नहीं हो सकता, फिर सुगन्ध और दुर्गन्धयुक्त वायु के वहीं रहने से रोगनाशादि फल भी नहीं होते।

यदा तु खलु तस्मिन् गृहेऽग्निमध्ये सुगन्ध्यादिद्रव्यस्य होमः क्रियते तदाऽग्निना पूर्वो वायुर्भेदं प्राप्य लघुत्वमापन्न उपर्य्याकाशं गच्छति। तस्मिन् गते सति तत्रावकाशत्वाच्चतसृभ्यो दिग्भ्यः शुद्धो वायुराद्रवति तेन गृहाकाशस्य पूर्णत्वादारोग्यादिकं फलमपि जायते।

भाषार्थ

और जब अग्नि उस वायु को वहां से हलका करके निकाल देता है तब वहां शुद्ध वायु भी प्रवेश कर सकता है। इसी कारण यह फल यज्ञ से ही हो सकता है अन्य प्रकार से नहीं। क्योंकि जो होम के परमाणुयुक्त शुद्ध वायु है सो पूर्वस्थित दुर्गन्धवायु को निकाल के उस देशस्थ वायु को शुद्ध करके रोगों का नाश करने वाला होता और मनुष्यादि सृष्टि को उत्तम सुख को प्राप्त करता है।

यो होमेन सुगन्धयुक्तद्रव्यपरमाणुयुक्त उपरिगतो वायुर्भवति स वृष्टिजलं शुद्धं कृत्वा, वृष्ट्याधिक्यमपि करोति। तद्द्वारौषध्यादीनां शुद्धेरुत्तरोत्तरं जगति महत्सुखं वर्धत इति निश्चीयते। एतत्खल्वग्निसंयोगरहितसुगन्धेन वायुना भवितुमशक्यमस्ति। तस्माद्धोमकरणमुत्तममेव भवतीति निश्चेतव्यम्।

भाषार्थ

जो वायु सुगन्ध्यादि द्रव्य के परमाणुओं से युक्त होमद्वारा आकाश में चढ़ के वृष्टिजल को शुद्ध कर देता और उससे वृष्टि भी अधिक होती है क्योंकि होम करके नीचे गर्मी अधिक होने से जल भी ऊपर अधिक चढ़ता है। शुद्ध जल और वायु

के द्वारा अन्नादि ओषधि भी अत्यन्त शुद्ध होती हैं। ऐसे प्रतिदिन सुगन्ध के अधिक होने से जगत् में नित्यप्रति अधिक २ सुख बढ़ता है। यह फल अग्नि में होम करने के विना दूसरे प्रकार से होना असम्भव है। इससे होम का करना अवश्य है।

अन्यच्च दूरस्थले केनचित्पुरुषेणाग्नौ सुगन्धद्रव्यस्य होमः क्रियते तद्युक्तो वायुर्दूरस्थमनुष्यस्य घ्राणेन्द्रियेण संयुक्तो भवति। सोऽत्र सुगन्धो वायुरस्तीति जानात्येव। अनेन विज्ञायते वायुना सह सुगन्धं दुर्गन्धं च द्रव्यं गच्छतीति। तद्यदा स दूरं गच्छति तदा तस्य घ्राणेन्द्रियसंयोगो न भवति पुनर्बालबुद्धीनां भ्रमो भवति स सुगन्धो नास्तीति। परन्तु तस्य हुतस्य पृथग्भूतस्य वायुस्थस्य सुगन्धयुक्तस्य द्रव्यस्य देशान्तरे वर्त्तमानत्वात्तैर्न विज्ञायते। अन्यदपि खलु होमकरणस्य बहुविधमुत्तमं फलमस्ति तद्विचारेण बुधैर्विज्ञेयमिति।

भाषार्थ

और भी सुगन्ध के नाश नहीं होने में कारण है कि किसी पुरुष ने दूर देश में सुगन्ध चीजों का अग्नि में होम किया हो, उस सुगन्ध से युक्त जो वायु है सो होम के स्थान से दूर देश में स्थित हुए मनुष्य के नाक इन्द्रिय के साथ संयुक्त होने से उसको यह ज्ञान होता है कि यहां सुगन्ध वायु है। इससे जाना जाता है कि द्रव्य के अलग होने में भी द्रव्य का गुण द्रव्य के साथ ही बना रहता है और वह वायु के साथ सुगन्ध और दुर्गन्ध युक्त सूक्ष्म होके जाता आता है। परन्तु जब वह द्रव्य दूर चला जाता है तब उसके नाक इन्द्रिय से संयोग भी छूट जाता है, फिर बालबुद्धि मनुष्यों को ऐसा भ्रम होता है कि वह सुगन्धित द्रव्य नहीं रहा। परन्तु यह उनको अवश्य जानना चाहिये कि वह सुगन्ध द्रव्य आकाश में वायु के साथ बना ही रहता है। इन से अन्य भी होम करने के बहुत से उत्तम फल हैं उनको बुद्धिमान् लोग विचार से जान लेंगे।

यदि होमकरणस्यैतत्फलमस्ति तद्धोमकरणमात्रेणैव सिध्यति पुनस्तत्र वेदमन्त्राणां पाठः किमर्थः क्रियते?। अत्र ब्रूमः। एतस्यान्यदेव फलमस्ति। किम्। यथा हस्तेन होमो, नेत्रेण दर्शनं, त्वचा स्पर्शनं च क्रियते, तथा वाचा वेदमन्त्रा अपि पठ्यन्ते। तत्पाठेनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः क्रियन्ते। होमेन किं फलं भवतीत्यस्य ज्ञानं, तत्पाठानुवृत्त्या वेदमन्त्राणां रक्षणमीश्वरस्यास्तित्वसिद्धिश्च। अन्यच्च सर्वकर्मादावीश्वरस्य प्रार्थना कार्य्येत्युपदेशः। यज्ञे तु वेदमन्त्रोच्चारणात्सर्वत्रैव तत्प्रार्थना भवतीति वेदितव्यम्।

भाषार्थ

प्र०—होम करने का जो प्रयोजन है सो तो केवल होम से ही सिद्ध होता है फिर वहां वेदमन्त्रों के पढ़ने का क्या काम है ? उ०—उनके पढ़ने का प्रयोजन कुछ और ही है। प्र०—वह क्या है ? उ०—जैसे हाथ से होम करते, आंख से देखते और त्वचा से स्पर्श करते हैं, वैसे ही वाणी से वेदमन्त्रों को भी पढ़ते हैं। क्योंकि उन के पढ़ने से वेदों की रक्षा, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना होती है। तथा होम से जो २ फल होते हैं उनका स्मरण भी होता है। वेदमन्त्रों के वारंवार पाठ करने से वे कण्ठस्थ भी रहते हैं और ईश्वर का होना भी विदित होता है कि कोई नास्तिक न होजाय, क्योंकि ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक ही सब कर्मों का आरम्भ करना होता है। सो वेदमन्त्रों के उच्चारण से यह यज्ञ में तो उसकी प्रार्थना सर्वत्र होती है। इसलिये सब उत्तम कर्म वेदमन्त्रों से ही करना उचित है।

कश्चिदत्राह वेदमन्त्रोच्चारणं विहायान्यस्य कस्यचित्पाठस्तत्र क्रियेत तदा किं दूषणमस्तीति? अत्रोच्यते। नान्यस्य पाठे कृते सत्येतत्प्रयोजनं सिध्यति। कुतः। ईश्वरोक्ताभावान्निरतिशयसत्याविरहाच्च। यद्यद्धि यत्र क्वचित्सत्यं प्रसिद्धमस्ति तत्तत्सर्वं वेदादेव प्रसृतमिति विज्ञेयम्। यद्यत्खल्वनृतं तत्तदनीश्वरोक्तं वेदाद्बहिरिति च। अत्रार्थे मनुराह। त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुवः। अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्य्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ १ ॥ अ० १। श्लो० ३ ॥ चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्। भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥ २ ॥ बिभर्त्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्। तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥ ३ ॥ अ० १२। श्लो० ९७। ९९ ॥

भाषार्थ

प्र०—यज्ञ में वेदमन्त्रों को छोड़ के दूसरे का पाठ करे तो क्या दोष है ? उ०—अन्य के पाठ में यह प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, ईश्वर के वचन से जो सत्य प्रयोजन सिद्ध होता है सो अन्य के वचन से कभी नहीं हो सकता, क्योंकि जैसा ईश्वर का वचन सर्वथा भ्रान्तिरहित सत्य होता है वैसा अन्य का नहीं और जो कोई वेदों के अनुकूल अर्थात् आत्मा की शुद्धि, आप्त पुरुषों के ग्रन्थों का बोध और उनकी शिक्षा से वेदों को यथावत् जानके कहता है उसका भी वचन सत्य ही होता है और जो केवल अपनी बुद्धि से कहता है वह ठीक २ नहीं हो सकता। इससे

यह निश्चय है कि जहां २ सत्य दीखता और सुनने में आता है, वहां २ वेदों में से ही फैला है और जो २ मिथ्या है सो २ वेद से नहीं, किन्तु वह जीवों ही की कल्पना से प्रसिद्ध हुआ है, क्योंकि जो ईश्वरोक्त ग्रन्थ से सत्य प्रयोजन सिद्ध होता है सो दूसरे से कभी नहीं हो सकता। इस विषय में मनु का प्रमाण है कि (त्वमे०)। मनुजी से ऋषि लोग कहते हैं कि स्वयंभू जो सनातन वेद हैं जिनमें असत्य कुछ भी नहीं और जिनमें सब सत्यविद्याओं का विधान है उनके अर्थ को जाननेवाले केवल आप ही हैं ॥ १ ॥ (चातु०) अर्थात् चार वर्ण, चार आश्रम, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान आदि की सब विद्या वेदों से ही प्रसिद्ध होती हैं ॥ २ ॥ क्योंकि (बिभर्त्ति०) यह जो सनातन वेद शास्त्र है सो सब विद्याओं के दान से संपूर्ण प्राणियों का धारण और सब सुखों को प्राप्त करता है, इस कारण से हम लोग उसको सर्वथा उत्तम मानते हैं और इसी प्रकार मानना भी चाहिये, क्योंकि सब जीवों के लिये सब सुखों का साधन यही है।

किं यज्ञानुष्ठानार्थं भूमिं खनित्वा वेदिः, प्रणीतादीनि पात्राणि, कुशतृणं, यज्ञशाला, ऋत्विजश्चैतत्सर्वं करणीयमस्ति ? । अत्र ब्रूमः । यद्यदावश्यकं युक्तिसिद्धं तत्तत्कर्त्तव्यं, नेतरत् । तद्यथा । भूमिं खनित्वा वेदी रचनीया, तस्यां होमे कृतेऽग्नेस्तीव्रत्वाद्धुतं द्रव्यं सद्यो विभेदं प्राप्याकाशं गच्छति । तथा वेदिदृष्टान्तेन त्रिकोणचतुष्कोणगोलश्येनाद्याकारवत्करणाद्रेखागणितमपि साध्यते । तत्र चेष्टकानां परिगणितत्वादनया गणितविद्यापि गृह्यते । एवमेवोत्तरेरपि पदार्थाः सप्रयोजनाः सन्त्येव, परन्त्वेवं प्रणीतायां रचितायां पुण्यं स्यादेवं पापमिति यदुच्यते तत्र पापनिमित्ताभावात्सा कल्पना मिथ्यैवास्ति । किंतु खलु यज्ञसिद्ध्यर्थं यद्यदावश्यकं युक्तिसिद्धमस्ति तत्तदेव ग्राह्यम् । कुतः । तैर्विना तदसिद्धेः ।

भाषार्थ

प्र०—क्या यज्ञ करने के लिये पृथिवी खोद के वेदिरचन, प्रणीता, प्रोक्षणी और चमसादि पात्रों का स्थापन, दर्भ का रखना, यज्ञशाला का बनाना और ऋत्विजों का करना, यह सब करना ही चाहिये ? उ०—करना तो चाहिये, परन्तु जो २ युक्तिसिद्ध हैं सो २ ही करने के योग्य हैं। क्योंकि जैसे वेदि बना के, उसमें होम करने से वह द्रव्य शीघ्र भिन्न २ परमाणुरूप होके, वायु और अग्नि के साथ आकाश में फैल जाता है, ऐसे ही वेदि में भी अग्नि तेज होने और होम का

साकल्य इधर उधर बिखरने से रोकने के लिये वेदि अवश्य रचनी चाहिये। और वेदि के त्रिकोण, चतुष्कोण, गोल तथा श्येन पक्षी आदि के तुल्य बनाने के दृष्टान्त से रेखागणित विद्या भी जानी जाती है, कि जिससे त्रिभुज आदि रेखाओं का भी मनुष्यों को यथावत् बोध हो तथा उसमें जो ईंटों की संख्या की है उससे गणितविद्या भी समझी जाती है। इस प्रकार से कि जब इतनी लम्बी चौड़ी और गहरी वेदि हो तो उस में इतनी बड़ी ईंटें इतनी लगेंगी इत्यादि वेदि के बनाने में बहुत प्रयोजन है। तथा सुवर्ण, चांदी वा काष्ठ के पात्र इस कारण से बनाते हैं कि उनमें जो घृतादि पदार्थ रक्खे जाते हैं वे बिगड़ते नहीं और कुश इसलिये रखते हैं कि जिससे यज्ञ-शाला का मार्जन हो और चिंवटी आदि कोई जन्तु वेदि की ओर अग्नि में न गिरने पावे। ऐसे ही यज्ञशाला बनाने का यह प्रयोजन है कि जिस से अग्नि की ज्वाला में वायु अत्यन्त न लगे और वेदि में कोई पक्षी किंवा उनकी बीठ भी न गिरे। इसी प्रकार ऋत्विजों के विना यज्ञ का काम कभी नहीं हो सकता, इत्यादि प्रयोजन के लिये यह सब विधान यज्ञ में अवश्य करना चाहिये। इनसे भिन्न द्रव्य की शुद्धि और संस्कार आदि भी अवश्य करने चाहियें। परन्तु इस प्रकार से प्रणीतापात्र रखने से पुण्य और इस प्रकार रखने से पाप होता है इत्यादि कल्पना मिथ्या ही है, किन्तु जिस प्रकार करने में यज्ञ का कार्य्य अच्छा बने वही करना अवश्य है, अन्य नहीं।

यज्ञे देवताशब्देन किं गृह्यते ?। याश्च वेदोक्ताः। अत्र प्रमाणानि। अ॒ग्निर्दे॒व॒ता वातो॑ दे॒व॒ता सूर्यो॑ दे॒व॒ता च॒न्द्रमा॑ दे॒व॒ता वस॑वो दे॒व॒ता रु॒द्रा दे॒व॒ताऽऽदि॒त्या दे॒व॒ता म॒रुतो॑ दे॒व॒ता विश्वे॑दे॒वा दे॒व॒ता बृह॒स्पति॒र्दे॒व॒तेन्द्रो॑ दे॒व॒ता वरु॑णो दे॒व॒ता ॥ १ ॥ यजुः अ० १४। मं० २० ॥

अत्र कर्मकाण्डे देवताशब्देन वेदमन्त्राणां ग्रहणम्। गायत्र्यादीनि छन्दांसि ह्यग्न्यादिदेवताख्यान्येव गृह्यन्ते। तेषां कर्मकाण्डादिविधेर्द्योतकत्वात्। यस्मिन्मन्त्रे चाग्निशब्दार्थप्रतिपादनं वर्त्तते स एव मन्त्रोऽग्निदेवतो गृह्यते। एवमेव वातः, सूर्य्य,श्चन्द्रमा, वसवो, रुद्रा, आदित्या, मरुतो, विश्वेदेवा, बृहस्पति,रिन्द्रो, वरुणश्चेत्येतच्छब्दयुक्ता मन्त्रा देवताशब्देन गृह्यन्ते, तेषामपि तत्तदर्थस्य द्योतकत्वात्परमात्मेश्वरेण कृतसंकेतत्वाच्च।

भाषार्थ

प्र०—यज्ञ में देवता शब्द से किसका ग्रहण होता है ?, उ०—जो २ वेद में कहे हैं उन्हीं का ग्रहण होता है। इसमें यह यजुर्वेद का प्रमाण है कि (अग्निर्देव०)।

कर्मकाण्ड अर्थात् यज्ञक्रिया में मुख्य करके देवता शब्द से वेदमन्त्रों का ही ग्रहण करते हैं, क्योंकि जो गायत्र्यादि छन्द हैं वे ही देवता कहाते हैं और इन वेदमंत्रों से ही सब विद्याओं का प्रकाश भी होता है। इसमें यह कारण है कि जिन २ मंत्रों में अग्नि आदि शब्द हैं उन २ मन्त्रों का और उन २ शब्दों के अर्थों का अग्नि आदि देवता नामों से ग्रहण होता है। मन्त्रों का देवता नाम इसलिये है कि उन्हीं से सब अर्थों का यथावत् प्रकाश होता है।

अत्राह यास्काचार्य्यो निरुक्ते। कर्मसंपत्तिर्मन्त्रो वेदे॥ नि० अ० १। खं० २॥ अथातो दैवतं, तद्यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद्दैवतमित्याचक्षते। सैषा देवतोपपरीक्षा, यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति। तास्त्रिविधा ऋचः। परोक्षकृताः, प्रत्यक्षकृता, आध्यात्मिक्यश्च॥ नि० अ० ७। खं० १॥ अस्यार्थः। (कर्मसं०) कर्मणामग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तानां शिल्पविद्यासाधनानां च संपत्तिः संपन्नता संयोगो भवति येन स मन्त्रो वेदे देवताशब्देन गृह्यते, तथा च कर्मणां संपत्तिर्मोक्षो भवति येन परमेश्वरप्राप्तिश्च सोपि मन्त्रो मन्त्रार्थश्चाङ्गीकार्य्यः। अथेत्यनन्तरं दैवतं किमुच्यते? यत्प्राधान्येन स्तुतिर्यासां देवतानां क्रियते तद्दैवतमिति विज्ञायते। यानि नामानि मन्त्रोक्तानि येषामर्थानां मन्त्रेषु विद्यन्ते तानि सर्वाणि देवतालिङ्गानि भवन्ति। तद्यथा। अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँ २॥ आसादयादिह॥ १॥ यजुः अ० २२। मं० १७॥ अत्राग्निशब्दो लिङ्गमस्ति। अतः किं विज्ञेयं? यत्र यत्र देवतोच्यते तत्र तत्र तल्लिङ्गो मन्त्रो ग्राह्य इति। यस्य द्रव्यस्य नामान्वितं यच्छन्दोस्ति तदेव दैवतमिति बोध्यम्। सा एषा देवतोपपरीक्षाऽतीता आगामिनी चास्ति। अत्रोच्यते। ऋषिरीश्वरः सर्वदृग्, यत्कामो यं कामयमान इममर्थमुपदिशेयमिति, स यत्कामः, यस्यां देवतायामार्थपत्यमर्थस्य स्वामित्वमुपदेष्टुमिच्छन् सन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते, तदर्थगुणकीर्त्तनं प्रयुक्तवानस्ति, स एव मन्त्रस्तद्दैवतो भवति। किंच यद्देवार्थप्रतीतिकरणं दैवतं प्रकाश्यं येन भवति स मन्त्रो देवताशब्दवाच्योस्तीति विज्ञायते। देवताभिधा ऋचः। याभिर्विद्वांसः सर्वाः सत्यविद्याः स्तुवन्ति, प्रकाशयन्ति, ऋचस्तुताविति धात्वर्थयोगात्। ताः श्रुतयस्त्रिविधास्त्रिप्रकारकाः सन्ति। परोक्षकृताः, प्रत्यक्षकृताः, आध्यात्मिक्यश्चेति। यासां देवतानामृचां परोक्षकृतोऽर्थोस्ति ताः परोक्षकृता, यासां प्रत्यक्षमर्थो दृश्यते ताः प्रत्यक्षकृता ऋचो

देवताः, आध्यात्मिक्यश्चाध्यात्मं जीवात्मानं, तदन्तर्यामिणं परमेश्वरं च प्रतिपादितुमर्हा या ऋचो मन्त्रास्ता आध्यात्मिक्यश्चेति । एता एव कर्मकाण्डे देवताशब्दार्थाः सन्तीति विज्ञेयम् ।

भाषार्थ

(कर्मसं०) वेदमन्त्रों करके अग्निहोत्र से लेके अश्वमेधपर्य्यन्त सब यज्ञों की शिल्पविद्या और उनके साधनों की सम्पत्ति अर्थात् प्राप्ति होती और कर्मकाण्ड को लेके मोक्षपर्य्यन्त सुख मिलता है इसी हेतु से उन का नाम देवता है । (अथातो०) दैवत उन को कहते हैं कि जिन के गुणों का कथन किया जाय, अर्थात् जो २ संज्ञा जिन २ मन्त्रों में जिस २ अर्थ की होती है उन २ मन्त्रों का नाम वही देवता होता है । जैसे (अग्निं दूतं०) इस मन्त्र में अग्नि शब्द चिह्न है, यहां इसी मन्त्र को अग्नि देवता जानना चाहिये । ऐसे ही जहां २ मन्त्रों में जिस २ शब्द का लेख है वहां २ उस २ मन्त्र को ही देवता समझना होता है । इसी प्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिये । सो देवता शब्द से जिस २ गुण से जो २ अर्थ लिये जाते हैं सो २ निरुक्त और ब्राह्मणादि ग्रन्थों में अच्छी प्रकार लिखा है । इसमें यह कारण है कि ईश्वर ने जिस २ अर्थ को जिस २ नाम से वेदों में उपदेश किया है उस २ नाम वाले मन्त्रों से उन्हीं अर्थों को जानना होता है । सो वे मन्त्र तीन प्रकार के हैं । उन में से कई एक परोक्ष अर्थात् अप्रत्यक्ष अर्थ के, कई एक प्रत्यक्ष अर्थात् प्रसिद्ध अर्थ के और कई एक आध्यात्मिक अर्थात् जीव, परमेश्वर और सब पदार्थों के कार्य्य कारण के प्रतिपादन करने वाले हैं । इससे क्या आया कि त्रिकालस्थ जितने पदार्थ और विद्या हैं उनके विधान करने वाले मन्त्र ही हैं । इसी कारण से इनका नाम देवता है ।

तद्येऽनादिष्टदेवतामन्त्रास्तेषु देवतोपपरीक्षा । यद्देवतः स यज्ञो वा यज्ञाङ्गं वा तद्देवता भवन्त्यथान्यत्र यज्ञात्प्राजापत्या इति याज्ञिका, नाराशंसा इति नैरुक्ता, अपि वा सा कामदेवता स्यात्, प्रायोदेवता वास्तिह्याचारो बहुलं लोके देवदेवत्यमतिथिदेवत्यं, पितृदेवत्यं, याज्ञदैवतो मन्त्र इति ॥ नि० अ० ७ । खं० ४ ॥

(तद्येनादि०) तत्तस्माद्ये खल्वनादिष्टदेवता मन्त्रा अर्थात्र विशेषतो देवतादर्शनं नामार्थो वा येषु दृश्यते तेषु देवतोपपरीक्षा कास्तीत्यत्रोच्यते । यत्र विशेषो न दृश्यते तत्रैवं यज्ञो देवता, यज्ञाङ्गं वेत्येतद्देवताख्यमिति विज्ञायते । ये खलु यज्ञादन्यत्र प्रयुज्यन्ते ते वै प्राजाप्रत्याः परमेश्वरदेवताका मन्त्रा भवन्तीत्येवं याज्ञिका

मन्यन्ते। अत्रैवं विकल्पोस्ति नाराशंसा मनुष्यविषया इति नैरुक्ता ब्रुवन्ति, तथा या कामना सा कामदेवता भवतीति सकामा लौकिका जना जानन्ति । एवं देवताविकल्पस्य प्रायेण लोके बहुलमाचारोस्ति । क्वचिद्देवदेवत्यं, कर्म, मातृदेवत्यं, विद्वद्देवत्यमतिथिदेवत्यं, पितृदेवत्यं चैतेपि पूज्याः सत्कर्त्तव्याः सन्त्यतस्तेषामुपकारकर्तृत्वमात्रमेव देवतात्वमस्तीति विज्ञायते । मन्त्रास्तु खलु यज्ञसिद्धये मुख्यहेतुत्वाद्याज्ञदैवता एव सन्तीति निश्चीयते ।

भाषार्थ

जिन २ मन्त्रों में सामान्य अर्थात् जहां २ किसी विशेष अर्थ का नाम प्रसिद्ध नहीं दीख पड़ता वहां २ यज्ञ आदि को देवता जानना होता है । (अग्निमीडे) इस मन्त्र के भाष्य में जो तीन प्रकार का यज्ञ लिखा है, अर्थात् एक तो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्य्यन्त, दूसरा प्रकृति से लेके पृथिवी पर्य्यन्त जगत् का रचन रूप तथा शिल्पविद्या और तीसरा सत्सङ्ग आदि से जो विज्ञान और योगरूप यज्ञ है, ये ही उन मन्त्रों के देवता जानने चाहियें । तथा जिनसे यह यज्ञ सिद्ध होता है वे भी उन यज्ञों के देवता हैं । और जो इनसे भिन्न मन्त्र हैं उन का प्राजापत्य अर्थात् परमेश्वर ही देवता है । तथा जो मन्त्र मनुष्यों के अर्थ का प्रतिपादन करते हैं उनके मनुष्य देवता हैं । इस में बहुत प्रकार के विकल्प हैं कि कहीं पूर्वोक्त देवता कहाते हैं, कहीं यज्ञादि कर्म, कहीं माता, कहीं पिता, कहीं विद्वान्, कहीं अतिथि और कहीं आचार्य्य देव कहाते हैं । परन्तु इसमें इतना भेद है कि यज्ञ में मन्त्र और परमेश्वर को ही देव मानते हैं ।

अत्र परिगणनं गायत्र्यादिच्छन्दोन्विता मन्त्रा, ईश्वराज्ञा, यज्ञः, यज्ञाङ्गं, प्रजापतिः, परमेश्वरः, नराः, कामः, विद्वान्, अतिथिः, माता, पिता, आचार्य्यश्चेति कर्मकाण्डादीन्प्रत्येता देवताः सन्ति । परन्तु मन्त्रेश्वरावेव याज्ञदैवते भवत इति निश्चयः ।

भाषार्थ

जो २ गायत्र्यादि छन्दों से युक्त वेदों के मन्त्र, उन्हीं में ईश्वर की आज्ञा, यज्ञ और उनके अङ्ग अर्थात् साधन, प्रजापति जो परमेश्वर, नर जो मनुष्य, काम, विद्वान्, अतिथि, माता, पिता और आचार्य्य ये अपने २ दिव्यगुणों से ही देवता कहाते हैं। परन्तु यज्ञ में तो वेदों के मन्त्र और ईश्वर को ही देवता माना है ।

अन्यच्च । देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा ॥ नि० अ० ७ । खं० १५ ॥ मन्त्रा मननाच्छन्दांसि छादनात् ॥ निरु० अ० ७ । खं० १२ ॥ अस्यार्थः । (देवो दानात्०) यत्स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वोत्पादनं तद्दानं भवति, (दीपनात्) दीपनं, प्रकाशनम्, (द्योतनात्) द्योतनमुपदेशादिकं च । अत्र दानशब्देनेश्वरो, विद्वांसो मनुष्याश्च देवतासंज्ञाः सन्ति । दीपनात्सूर्य्यादयो, द्योतनान्मातृपित्राचार्य्यातिथयश्च । (द्युस्थाने) तथा द्यौः किरणा आदित्यरश्मयः प्राणसूर्य्यादयो वा स्थानं स्थित्यर्थं यस्य स द्युस्थानः, प्रकाशकानामपि प्रकाशकत्वात्परमेश्वर एवात्र देवोस्तीति विज्ञेयम् । अत्र प्रमाणम् । न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ इति कठ० वल्ली ५ । मं० १५ ॥ तत्र नैव परमेश्वरे सूर्य्यादयो भान्ति, प्रकाशं कुर्वन्ति । किन्तु तमेव भान्तं प्रकाशयन्तमनु पश्चात्ते हि प्रकाशयन्ति । नैव खल्वेतेषु कश्चित्स्वातन्त्र्येण प्रकाशोस्तीति । अतो मुख्यो देव एकः परमेश्वर एवोपास्योस्तीति मन्यध्वम् ।

भाषार्थ

(देवो दाना०) दान देने से देव नाम पड़ता है और दान कहते हैं अपनी चीज दूसरे के अर्थ दे देना, दीपन कहते हैं प्रकाश करने को, द्योतन कहते हैं सत्योपदेश को । इनमें से दान का दाता मुख्य एक ईश्वर ही है कि जिसने जगत् को सब पदार्थ दे रक्खे हैं, तथा विद्वान् मनुष्य भी विद्यादि पदार्थों के देने वाले होने से देव कहाते हैं । (दीपन) अर्थात् सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करने से सूर्य्यादि लोकों का नाम भी देव है (द्योतन) तथा माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि भी पालनविद्या और सत्योपदेशादि के करने से देव कहाते हैं, वैसे ही सूर्य्यादि लोकों का भी जो प्रकाश करनेवाला है, सो ही ईश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने के योग्य इष्टदेव है, अन्य कोई नहीं । इस में कठोपनिषद् का भी प्रमाण है कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बिजुली और अग्नि ये सब परमेश्वर में प्रकाश नहीं कर सकते, किन्तु इन सब का प्रकाश करने वाला एक वही है, क्योंकि परमेश्वर के प्रकाश से ही सूर्य्य आदि सर्व जगत् प्रकाशित हो रहा है, इस में यह जानना चाहिये कि ईश्वर से भिन्न कोई पदार्थ स्वतन्त्र प्रकाश करने वाला नहीं है, इस से एक परमेश्वर ही मुख्य देव है ।

नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् ॥ य० अ० ४० । मं० ४ ॥ अत्र देवशब्देन

मनःषष्ठानि श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि गृह्यन्ते, तेषां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानां सत्यासत्ययोश्चार्थानां द्योतकत्वात्तान्यपि देवाः । यो देवः सा देवता, देवात्तलित्यनेन सूत्रेण स्वार्थे तल्विधानात् । स्तुतिर्हि गुणदोषकीर्तनं भवति । यस्य पदार्थस्य मध्ये यादृशा गुणा वा दोषाः सन्ति तादृशानामेवोपदेशः स्तुतिर्विज्ञायते । तद्यथा । अयमसिः प्रहृतः सन्नतीवच्छेदनं करोति, तीक्ष्णधारः स्वच्छो धनुर्वन्नाम्यमानोपि न त्रुट्यतीत्यादिगुणकथनमतो विपरीतोऽसिनैव तत् कर्त्तुं समर्थो भवतीत्यसेः स्तुतिर्विज्ञेया ।

भाषार्थ

(नैनद्देवा०) इस वचन में देव शब्द से इन्द्रियों का ग्रहण होता है जो कि श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक और मन ये छः देव कहाते हैं, क्योंकि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सत्य और असत्य इत्यादि अर्थों का इन से प्रकाश होता है और देव शब्द से स्वार्थ में तल् प्रत्यय करने से देवता शब्द सिद्ध होता है । जो २ गुण जिस २ पदार्थ में ईश्वर ने रचे हैं उन २ गुणों का लेख, उपदेश, श्रवण और विज्ञान करना तथा मनुष्यसृष्टि के गुण दोषों का भी लेख आदि करना इस को स्तुति कहते हैं । क्योंकि जितना २ जिस २ में गुण है उतना २ उस २ में देवपन है । इस से वे किसी के इष्टदेव नहीं हो सकते । जैसे किसी ने किसी से कहा कि यह तलवार काट करने में बहुत अच्छी और निर्मल है, इस की धार बहुत तेज है और यह धनुष् के समान नमाने से भी नहीं टूटती इत्यादि तलवार के गुणकथन को स्तुति कहते हैं ।

तद्वदन्यत्रापि विज्ञेयम् । परन्त्वयं नियमः कर्म्मकाण्डं प्रत्यस्ति । उपासनाज्ञानकाण्डयोः कर्म्मकाण्डस्य निष्कामभागेपि च परमेश्वर एवेष्टदेवोस्ति । कस्मात् । तत्र तस्यैव प्राप्तिः प्रार्थ्यते । यश्च तस्य सकामो भागोस्ति तत्रेष्टविषयभोगप्राप्तये परमेश्वरः प्रार्थ्यते । अतः कारणाद्भेदो भवति । परन्तु नैवेश्वरार्थत्यागः क्वापि भवतीति वेदाभिप्रायोस्ति ।

भाषार्थ

इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना इस नियम के साथ कि केवल परमेश्वर ही कर्म उपासना और ज्ञानकाण्ड में सब का इष्टदेव स्तुति, प्रार्थना, पूजा और उपासना करने के योग्य है, क्योंकि गुण वे कहाते हैं जिनसे कर्मकाण्डादि में उपकार लेना होता है । परन्तु सर्वत्र कर्मकाण्ड में भी इष्टभोग की प्राप्ति के लिये परमेश्वर का

त्याग नहीं होता, क्योंकि कार्य्य कारण सम्बन्ध से ईश्वर ही सर्वत्र स्तुति, प्रार्थना, उपासना से पूजा करने के योग्य होता है।

अत्र प्रमाणम् । माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते, एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति । कर्मजन्मान, आत्मजन्मान, आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माऽश्वा, * आत्मायुधमात्मेषव, आत्मा सर्वं देवस्य देवस्य ॥ नि० अ० ७ । खं० ४ ॥ (माहाभाग्याद्दे०) सर्वासां व्यवहारोपयोगिदेवतानां मध्य आत्मन एव मुख्यं देवतात्वमस्ति । कुतः । आत्मनो माहाभाग्यादर्थात्सर्वशक्तिमत्त्वादिविशेषणवत्त्वात् । न तस्याग्रेऽन्यस्य कस्यापि देवतात्वं गण्यं भवितुमर्हति । कुतः । सर्वेषु वेदेष्वेकस्याद्वितीयस्यासहायस्य सर्वत्रव्याप्तस्यात्मन एव बहुधा बहुप्रकारैरुपासना विहितास्ति । अस्मादन्ये ये देवा उक्ता, वक्ष्यन्ते च, ते सर्वे एकस्यात्मनः परमेश्वरस्य प्रत्यङ्गान्येव भवन्ति । अङ्गमङ्गं प्रत्यञ्चतीति निरुक्त्या तस्यैव सामर्थ्यस्यैकैकस्मिन्देशे प्रकाशिताः सन्ति । ते च (कर्मज०) यतः कर्मणा जायन्ते तस्मात्कर्मजन्मानो, यत आत्मन ईश्वरस्य सामर्थ्याज्जातास्तस्मादात्मजन्मानश्च सन्ति । अथैतेषां देवानामात्मा परमेश्वर एव रथो रमणाधिकरणम् । स एवाश्वागमनहेतवः । स आयुधं विजयावहमिषवो बाणा दुःखनाशकाः स एवास्ति । तथा चात्मैव देवस्य देवस्य सर्वस्वमस्ति । अर्थात्सर्वेषां देवानां स एवोत्पादको धाताधिष्ठाता मंगलकारी वर्त्तते । नातः परं किंचिदुत्तमं वस्तु विद्यत इति बोध्यम् ।

भाषार्थ

इस में निरुक्त का भी प्रमाण है कि व्यवहार के देवताओं की उपासना कभी नहीं करनी चाहिये, किन्तु एक परमेश्वर ही की करनी उचित है। इसका निश्चय वेदों में अनेक प्रकार से किया है कि एक अद्वितीय परमेश्वर के ही प्रकाश, धारण, उत्पादन करने से वे सब व्यवहार के देव प्रकाशित हो रहे हैं। इन का जन्म, कर्म और ईश्वर के सामर्थ्य से होता है और इन का रथ अर्थात् जो रमण का स्थान, अश्वा अर्थात् शीघ्र सुख प्राप्ति का कारण, आयुध अर्थात् सब शत्रुओं के नाश करने का हेतु और इषु अर्थात् जो बाण के समान सब दुष्ट गुणों का छेदन करने वाला शस्त्र है सो एक परमेश्वर ही है, क्योंकि परमेश्वर ने जिस २ में जितना २ दिव्यगुण रक्खा है उतना २ ही उन द्रव्यों में देवपन है अधिक नहीं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि केवल परमेश्वर ही उन सब का उत्पादन, धारण और मुक्ति का देनेवाला है।

* अश्व इति निरुक्ते पाठः ॥

अत्रान्यदपि प्रमाणम् । ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् । विदन्नह द्वितासनन् ॥१॥ ऋ० अ० ६ । अ० २ । व० ३५ । मं० १ ॥ त्रयस्त्रिंशता-स्तुवत भूतान्यशाम्यन्प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥ २ ॥ य० अ० १४ । मं० ३१ ॥ यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा । निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥ ३ ॥ यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे । तान्वै त्रय-स्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥४॥ अथर्व० कां० १० । प्रपा० २३ । अनु० ४ । मं० २३ । २७ ॥ सहोवाच महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवा इति । कतमे ते त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव, एकादश रुद्राः, द्वादशादित्यास्त एकत्रिंश-दिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति ॥ ३ ॥ कतमे वसव इति ?, अग्निश्च, पृथिवी च, वायुश्चान्तरिक्षं, चादित्यश्च, द्यौश्च, चन्द्रमाश्च, नक्षत्राणि चैते वसवः । एतेषु हीदं सर्वं वसु हितमेतेहीदंसर्वं वासयन्ते तद्यदिदंसर्वं वासयन्ते तस्मा-द्वसव इति ॥ ४ ॥ कतमे रुद्रा इति ? दशेमे पुरुषे प्राणा, आत्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति, तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥ ५ ॥ कतम आदित्या इति ? द्वादशमासाः संवत्सरस्यैत आदित्याः । एते हीदं सर्वमाददाना यन्ति, तद्यदिदंसर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥ ६ ॥ कतम इन्द्रः, कतमः प्रजापतिरिति ? स्तनयित्नुरेवेन्द्रो, यज्ञः प्रजापतिरिति । कतमः स्तनयित्नुरित्यशनिरिति । कतमो यज्ञ इति ? पशव इति ॥ ७ ॥ कतमे ते त्रयो देवा इतीम एव त्रयो लोका, एषु हीमे सर्वे देवा इति । कतमौ द्वौ देवावि-त्यन्नं चैव प्राणश्चेति । कतमोऽध्यर्ध इति ? योऽयं पवत इति ॥ ८ ॥ तदाहुः । यद-यमेक एव पवतेऽथ कथमध्यर्ध इति ? यदस्मिन्निदं सर्वमध्यार्ध्नोत्तेनाध्यर्ध इति । कतम एको देव इति ? स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥ ९ ॥ श० कां० १४ । अ० ५ ॥ अथैषामर्थः ॥ वेदमन्त्राणामेवार्थो ब्राह्मणग्रन्थेषु प्रकाशित इति द्रष्टव्यम् । शाकल्यं प्रति याज्ञवल्क्योक्तिः । त्रयस्त्रिंशदेव देवाः सन्ति । अष्टौ वसवः, एकादश रुद्राः, द्वादशादित्याः, इन्द्रः, प्रजापतिश्चेति । तत्र (वसवः) अग्निः, पृथिवी, वायुः, अन्तरिक्षम्, आदित्यः, द्यौः, चन्द्रमाः, नक्षत्राणि च । एतेषामष्टानां वसुसंज्ञा कृतास्ति । आदित्यः सूर्य्यलोकस्तस्य प्रकाशोस्ति द्यौः सूर्य्यसन्निधौ पृथिव्यादिषु वा । अग्निलोकोऽस्त्यग्निरेव । कुत एते वसव इति ?, यद्यस्मादेते-ष्वष्टस्वेवेदं सर्वं सम्पूर्णं वसु वस्तुजातं हितं धृतमास्ति, किंच सर्वेषां वासाधिकर-णानीम एव लोकाः सन्ति । हि यतश्चेदं वासयन्ते सर्वस्यास्य जगतो वासहेतवस्त-

स्मात्कारणादग्न्यादयो वसुसंज्ञकाः सन्तीति बोद्धव्यम् । (एकादश रुद्राः) ये पुरुषेऽस्मिन्देहे । प्राणः, अपानः, व्यानः, समानः, उदानः, नागः, कूर्मः, कृकलः, देवदत्तः, धनञ्जयश्च । इमे दश प्राणा, एकादश आत्मा, सर्वे मिलित्वैकादश रुद्रा भवन्ति । कुत एते रुद्रा ? इत्यत्राह, यदा यस्मिन्कालेऽस्मान्मरणधर्मकाच्छरीरादुत्क्रामन्तो निःसरन्तः सन्तोऽथेत्यनन्तरं मृतकसम्बन्धिनो जनांस्ते रोदयन्ति, यतो जना रुदन्ति, तस्मात्कारणादेते रुद्राः सन्तीति विज्ञेयम् । (द्वादशादित्याः) चैत्राद्याः फाल्गुनान्ता द्वादश मासा आदित्या विज्ञेयाः । कुतः ? हि यत एते सर्वं जगदाददाना अर्थादासमन्तादृगृह्णन्तः प्रतिक्षणमुत्पन्नस्य वस्तुन आयुषः प्रलयं निकटमानयन्तो यन्ति गच्छन्ति, चक्रवद् भ्रमणेनोत्तरोत्तरं जातस्य वस्तुनोऽवयवशिथिलतां परिणामेन प्रापयन्ति, तस्मात्कारणान्मासानामादित्यसंज्ञा कृतास्ति । इन्द्रः परमैश्वर्य्ययोगात्स्तनयित्नुरशनिर्विद्युदिति । प्रजापतिर्यज्ञः पशवइति । प्रजायाः पालनहेतुत्वात्पशूनां यज्ञस्य च प्रजापतिरिति गौणिकी संज्ञा कृतास्ति । एते सर्वे मिलित्वा त्रयस्त्रिंशद्देवा भवन्ति । देवो दानादित्यादिनिरुक्त्या ह्येतेषु व्यावहारिकमेव देवत्वं योजनीयम् । त्रयो लोकास्त्रयो देवाः । के ते ? इत्यत्राह निरुक्तकारः, धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानीति ॥ नि० अ० ६ । खं० २८ ॥ त्रयो लोका एत एव । वागेवायं लोको, मनोन्तरिक्षलोकः, प्राणोऽसौ लोकः ॥ श० कां० १४ । अ० ४ । ब्रा० ३ । कं० ११ ॥ एतेपि त्रयो देवा ज्ञातव्याः ॥ द्वौ देवावन्नं प्राणश्चेति । अध्यर्धो ब्रह्माण्डस्थः सूत्रात्माख्यः सर्वजगतो वृद्धिकरत्वाद्वायुर्देवः । किमेते सर्व एवोपास्याः सन्तीत्यत्राह, नैव, किन्तु (स ब्रह्म०) यत्सर्वजगत्कर्तृ, सर्वशक्तिमत्सर्वस्येष्टं, सर्वोपास्यं, सर्वाधारं, सर्वव्यापकं, सर्वकारणमनादि, सच्चिदानन्दस्वरूपमजं, न्यायकारीत्यादिविशेषणयुक्तं ब्रह्मास्ति स एवैको देवश्चतुस्त्रिंशो वेदोक्तसिद्धान्तप्रकाशितः परमेश्वरो देवः सर्वमनुष्यैरुपास्योस्तीति मन्यध्वम् । ये वेदोक्तमार्गपरायणा आर्य्यास्ते सर्वदैतस्यैवोपासनं चक्रुः, कुर्वन्ति, करिष्यन्ति च । अस्माद्भिन्नस्येष्टकरणेनोपासनेन चानार्य्यत्वमेव मनुष्येषु सिध्यतीति निश्चयः । अत्र प्रमाणम् । आत्मेत्येवोपासीत, स योन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात् प्रियꣳरोत्स्यतीतीश्वरो ह तथैव स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीत, स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्यप्रियं प्रमायुकं भवति । योन्यां देवतामुपास्ते न स वेद यथा पशुरेवꣳ स देवानाम् ॥ श० कां० १४ । अ० ४ । ब्रा० २ । कं० १९, २२ ॥ अनेनार्य्येतिहासेन विज्ञायते न परमेश्वरं विहायान्यस्योपासका आर्य्या आसन्निति।

भाषार्थ

अब आगे देवता विषय में तेतीस देवों का व्याख्यान लिखते हैं। जैसा ब्राह्मण ग्रन्थों में वेद मन्त्रों का व्याख्यान लिखा है (त्रयस्त्रिंशत्०)। अर्थात् व्यवहार के ये (३३) तेतीस देवता हैं। (८) आठ वसु, (११) ग्यारह रुद्र, (१२) बारह आदित्य, (१) एक इन्द्र और एक प्रजापति। उन में से आठ वसु ये हैं—अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः, चन्द्रमा और नक्षत्र। इन का वसु नाम इस कारण से है कि सब पदार्थ इन्हीं में बसते हैं और ये ही सबके निवास करने के स्थान हैं। (११) ग्यारह रुद्र ये कहाते हैं—जो शरीर में दश प्राण हैं, अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और ग्यारहवां जीवात्मा है, क्योंकि जब वे इस शरीर से निकल जाते हैं तब मरण होने से उसके सम्बन्धी लोग रोते हैं, वे निकलते हुए उन को रुलाते हैं इससे इन का नाम रुद्र है। इसी प्रकार आदित्य बारह महीनों को कहते हैं, क्योंकि वे सब जगत् के पदार्थों का आदान अर्थात् सब की आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं, इसी से इन का नाम आदित्य है। ऐसे ही इन्द्र नाम बिजुली का है, क्योंकि वह उत्तम ऐश्वर्य्य की विद्या का मुख्य हेतु है और यज्ञ को प्रजापति इसलिये कहते हैं कि उससे वायु और वृष्टि जल की शुद्धिद्वारा प्रजा का पालन होता है, तथा पशुओं की यज्ञसंज्ञा होने का यह कारण है कि उन से भी प्रजा का जीवन होता है, ये सब मिल के अपने २ दिव्य गुणों से तेतीस देव कहाते हैं। और तीन देव स्थान, नाम और जन्म को कहते हैं। दो देव अन्न और प्राण को कहते हैं। अध्यर्धदेव अर्थात् जिससे सब का धारण और वृद्धि होती है, जो सूत्रात्मा वायु सब जगत् में भर रहा है उस को अध्यर्धदेव कहते हैं। प्र०—क्या ये चालीस देव भी सब मनुष्यों को उपासना के योग्य हैं? उ०—इन में से कोई भी उपासना के योग्य नहीं है, किन्तु व्यवहारमात्र की सिद्धि के लिये ये सब देव हैं, और सब मनुष्यों के उपासना के योग्य तो देव एक ब्रह्म ही है। इसमें यह प्रमाण है (स ब्रह्म०)। जो सब जगत् का कर्ता, सर्वशक्तिमान्, सब का इष्ट, सब को उपासना के योग्य, सब का धारण करने वाला, सब में व्यापक और सब का कारण है, जिसका आदि अन्त नहीं और जो सच्चिदानन्दस्वरूप है, जिसका जन्म कभी नहीं होता और जो कभी अन्याय नहीं करता इत्यादि विशेषणों से वेदादि शास्त्रों में जिसका प्रतिपादन किया है उसी को इष्ट देव मानना चाहिये

और जो कोई इससे भिन्न को इष्ट देव मानता है उसको अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी कहना चाहिये, क्योंकि (आत्मेत्ये०) इस में आर्य्यों का इतिहास शतपथब्राह्मण में है कि परमेश्वर जो सब का आत्मा है सब मनुष्यों को उसी की उपासना करनी उचित है । इस में जो कोई कहै कि परमेश्वर को छोड़ के दूसरे में भी ईश्वरबुद्धि से प्रेम-भक्ति करनी चाहिये तो उससे कहे कि तू सदा दुःखी होके रोदन करेगा, क्योंकि जो ईश्वर की उपासना करता है वह सदा आनन्द में ही रहता है, जो दूसरे में ईश्वरबुद्धि करके उपासना करता है वह कुछ भी नहीं जानता, इसलिये वह विद्वानों के बीच में पशु अर्थात् गधा के समान है । इससे यह निश्चय हुआ कि आर्य्य लोग सब दिन से एक ईश्वर ही की उपासना करते आये हैं ।

अतः फलितार्थोऽयं जातः । देवशब्दे दिवुधातोर्ये दशार्थास्ते संगता भवन्तीति । तद्यथा । क्रीडा । विजिगीषा । व्यवहारः । द्युतिः । स्तुतिः । मोदः । मदः । स्वप्नः । कान्तिः । गतिश्चेति । एषामुभयत्र समानार्थत्वात् । परन्त्वन्याः सर्वा देवताः परमेश्वरप्रकाश्याः सन्ति, स च स्वयंप्रकाशोऽस्ति । तत्र क्रीडनं क्रीडा । दुष्टान् विजेतुमिच्छा विजिगीषा । व्यवह्रियन्ते यस्मिन् व्यवहरणं व्यवहारः । स्वप्नो निद्रा । मदो ग्लेपनं दीनता । एते मुख्यतया लौकिकव्यवहारवृत्तयो भवन्ति । तत्सिद्धिहेतवोऽग्न्यादयो देवताः सन्ति । अत्रापि नैव सर्वथा परमेश्वरस्य त्यागो भवति, तस्य सर्वत्रानुषंगितया सर्वोत्पादकाधारकत्वात् । तथा द्युतिर्द्योतनं प्रकाशनं, स्तुतिर्गुणेषु गुणकथनं, स्थापनं च । मोदो हर्षः । प्रसन्नता कान्तिः, शोभा । गतिर्ज्ञानं, गमनं, प्राप्तिश्चेति । एते परमेश्वरे मुख्यवृत्त्या यथावत्संगच्छन्ते । अतोऽन्यत्र तत्सत्तया गौण्या वृत्त्या वर्त्तन्ते । एवं गौणमुख्याभ्यां हेतुभ्यामुभयत्र देवतात्वं सम्यक् प्रतीयते ।

भाषार्थ

इससे यह सिद्ध हुआ कि दिवु धातु के जो दश अर्थ हैं वे व्यवहार और परमार्थ इन दोनों अर्थ में यथावत् घटते हैं, क्योंकि इनके दोनों अर्थ की योजना वेदों में अच्छी प्रकार से की है । इन में इतना भेद है कि पूर्वोक्त वसु आदि देवता परमेश्वर के ही प्रकश से प्रकाशित होते हैं और परमेश्वर देव तो अपने ही प्रकाश से सदा प्रकाशित हो रहा है । इससे वही एक सब का पूज्यदेव है । और दिवु धातु के दश अर्थ ये हैं कि एक क्रीड़ा जो खेलना, दूसरा विजिगीषा जो शत्रुओं को जीतने की इच्छा होना, तीसरा व्यवहार जो कि दो प्रकार का है एक बाहर और दूसरा भीतर

का, चौथा निद्रा और पांचवां मद, ये पांच अर्थ मुख्य करके व्यवहार में ही घटते हैं, क्योंकि अग्नि आदि ही पदार्थ व्यवहारसिद्धि के हेतु हैं। परन्तु परमेश्वर का त्याग इस में भी सर्वथा नहीं होता, क्योंकि वे देव उसी की व्यापकता और रचना से दिव्य गुण वाले हुए हैं। तथा द्युति जो प्रकाश करना, स्तुति जो गुणों का कीर्त्तन करना, मोद प्रसन्नता, कान्ति जो शोभा, गति जो ज्ञान, गमन और प्राप्ति है, ये पांच अर्थ परमेश्वर में मुख्य करके वर्त्तते हैं, क्योंकि इन से भिन्न अर्थों में जितने २ जिन २ में गुण हैं उतना २ ही उनमें देवतापन लिया जाता है। परमेश्वर में तो सर्व-शक्तिमत्त्वादि सब गुण अनन्त हैं, इससे पूज्यदेव एक वही है।

अत्र केचिदाहुः। वेदेषु जड़चेतनयोः पूजाभिधानाद्वेदाः संशयास्पदं प्राप्ताः सन्तीति गम्यते ?। अत्रोच्यते। मैवं भ्रमि। ईश्वरेण सर्वेषु पदार्थेषु स्वातन्त्र्यस्य रचितत्वात्। यथा चक्षुषि रूपग्रहणशक्तिस्तेन रचितास्ति। अतश्चक्षुष्मान् पश्यति नैवान्धश्चेति व्यवहारोऽस्ति। अत्र कश्चिद् ब्रूयान्नेत्रेण सूर्य्यादिभिश्च विनेश्वरो रूपं कथं न दर्शयतीति, यथा तस्य व्यर्थेयं शङ्कास्ति तथा पूजनं, पूजा, सत्कारः, प्रियाचरणमनुकूलाचरणं चेत्यादयः पर्य्याया भवन्ति। इयं पूजा चक्षुषोपि सर्वे-र्जनैः क्रियते। एवमग्न्यादिषु यावदर्थद्योतकत्वं विद्याक्रियोपयोगित्वं चास्ति, तावद्देवतात्वमप्यस्तु, नात्र काचित्क्षतिरस्ति। कुतः। वेदेषु यत्र यत्रोपासना विधीयते तत्र तत्र देवतात्वेनेश्वरस्यैव ग्रहणात्।

भाषार्थ

प्रश्न—इस विषय में कोई२ मनुष्य ऐसा कहते हैं कि वेदों के प्रतिपादन से एक ईश्वर की पूजा सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि उन में जड़ और चेतन की पूजा लिखी है। इससे वेदों में संदेह सहित कथन मालूम पड़ता है। **उत्तर**—ऐसा भ्रम मत करो, क्योंकि ईश्वर ने सब पदार्थों के बीच में स्वतन्त्र गुण रक्खे हैं। जैसे उसने आंख में देखने का सामर्थ्य रक्खा है तो उससे दीखता है, यह लोक में व्यवहार है। इस में कोई पुरुष ऐसा कहे कि ईश्वर नेत्र और सूर्य के विना रूप को क्यों नहीं दिखलाता है जैसे यह शङ्का उसकी व्यर्थ है वैसे ही पूजा विषय में भी जानना। क्योंकि जो दूसरे का सत्कार, प्रियाचरण अर्थात् उस के अनुकूल काम करना है इसी का नाम पूजा है। सो सब मनुष्यों को करनी उचित है। इसी प्रकार अग्नि आदि पदार्थों में जितना २ अर्थ का प्रकाश, दिव्यगुण, क्रियासिद्धि और उपकार लेने का सम्भव है उतना २ उन में देवपन मानने से कुछ भी हानि नहीं हो सकती। क्योंकि वेदों में जहां २

उपासनाव्यवहार लिया जाता है वहां २ एक अद्वितीय परमेश्वर का ही ग्रहण किया है।

तत्रापि मतद्वयं विग्रहवत्यविग्रहवद्देवताभेदात् । तच्चोभयं पूर्वं प्रतिपादितम् । अन्यच्च । मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव ॥ प्रपा० ७ । अनु० ११ ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ प्रपा० ७ । अनु० १ ॥ इति सर्वमनुष्योपास्याः पञ्चदेवतास्तैत्तिरीयोपनिषद्युक्ताः । यथात्र मातापितरावाचार्य्योऽतिथिश्चेति सशरीरा देवताः सन्ति । एवं सर्वथा निःशरीरं ब्रह्मास्ति ।

भाषार्थ

इस देवता विषय में दो प्रकार का भेद है । एक मूर्त्तिमान और दूसरा अमूर्त्तिमान । जैसे माता, पिता, आचार्य, अतिथि ये चार तो मूर्त्तिमान् देवता हैं और पांचवां परब्रह्म अमूर्त्तिमान् है, अर्थात् उसकी किसी प्रकार की मूर्त्ति नहीं है । इस प्रकार से पांचदेव की पूजा में यह दो प्रकार का भेद जानना उचित है ।

तथैव पूर्वोक्तासु देवतास्वग्निपृथिव्यादित्यचन्द्रमोनक्षत्राणि चेति पञ्च वसवो विग्रहवत्यः सन्ति । एवमेकादश रुद्राः, द्वादशादित्याः, मनःषष्ठानि ज्ञानेन्द्रियाणि, वायुरन्तरिक्षं, द्यौर्मन्त्राश्चेति शरीररहिताः । तथा स्तनयित्नुर्विधियज्ञो च सशरीराशरीरे देवते स्त इति । एवं सशरीरनिश्शरीरभेदेन देवताद्वयं भवति । तत्रैतासां व्यवहारोपयोगित्वमात्रमेव देवतात्वं गृह्यते । इत्थमेव मातृपित्राचार्य्यातिथीनां व्यवहारोपयोगित्वं परमार्थप्रकाशकत्वं चैतावन्मात्रं च । परमेश्वरस्तु खल्विष्टोपयोगित्वेनैवोपास्योऽस्ति । नातो वेदेषु ह्यपरा काचिद्देवता पूज्योपास्यत्वेन विहितास्तीति निश्चीयताम् ।

भाषार्थ

इसी प्रकार पूर्वोक्त आठ वसुओं में से अग्नि, पृथिवी, आदित्य, चन्द्रमा और नक्षत्र ये पांच मूर्त्तिमान् देव हैं और ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, मन, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ और मन्त्र, ये मूर्त्तिमान् देव हैं । तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां बिजुली और विधियज्ञ ये सब देव मूर्त्तिमान् और अमूर्त्तिमान् भी हैं * । इससे साकार और निराकार भेद से दो प्रकार की व्यवस्था देवताओं में जाननी चाहिये । इनमें से पृथिव्यादि का देवपन केवल व्यवहार में तथा माता, पिता, आचार्य्य और अतिथियों

* इन्द्रियों की शक्तिरूपद्रव्य अमूर्त्तिमान् और गोलक मूर्त्तिमान्, तथा विद्युत् और विधियज्ञ में जो २ शब्द तथा ज्ञान अमूर्त्तिमान् और दर्शन तथा सामग्री मूर्त्तिमान् जानना चाहिये ।

का व्यवहार में उपयोग और परमार्थ का प्रकाश करनामात्र ही देवपन है और ऐसे ही मन और इन्द्रियों का उपयोग व्यवहार और परमार्थ करने में होता है। परन्तु सब मनुष्यों को उपासना करने के योग्य एक परमेश्वर ही देव है।

अत्र इदानींतनाः केचिदार्य्या यूरोपखण्डवासिनश्च भौतिकदेवतानामेव पूजनं वेदेष्वस्तीत्यूचुर्वदन्ति च तदलीकतरमस्ति। तथा यूरोपखण्डवासिनो बहव एवं वदन्ति पुरा ह्यार्य्या भौतिकदेवतानां पूजका आसन् पुनस्ताः संपूज्य संपूज्य च बहुकालान्तरे परमात्मानं पूज्यं विदुरिति। तदप्यसत्। तेषां सृष्टयारम्भमारभ्याने-कैरिन्द्रवरुणाग्न्यादिभिर्नामभिर्वेदोक्तरीत्येश्वरस्यैवोपासनानुष्ठानाचारागमात्।

भाषार्थ

प्र०—कितने ही आजकल के आर्य्य और यूरोपदेशवासी अर्थात् अंगरेज़ आदि लोग इस में ऐसी शंका करते हैं कि वेदों में पृथिव्यादि भूतों की पूजा कही है। वे लोग यह भी कहते हैं कि पहिले आर्य्य लोग भूतों की पूजा करते थे, फिर पूजते २ बहुत काल पीछे उन्होंने परमेश्वर को भी पूज्य जाना था। उ०—यह उन का कहना मिथ्या है, क्योंकि आर्य्य लोग सृष्टि के आरम्भ से आज पर्य्यन्त इन्द्र, वरुण और अग्नि आदि नामों करके वेदोक्त प्रमाण से एक परमेश्वर की ही उपासना करते चले आये हैं। इस विषय में अनेक प्रमाण हैं, उन में से थोड़े से यहां भी लिखते हैं।

अत्र प्रमाणानि। (अग्निमी०) अस्य मन्त्रस्य व्याख्याने हि, इन्द्रं मित्रम्०। ऋङ्मन्त्रोऽयम्। अस्योपरीमन्नेवाग्निं महान्तमात्मानमित्यादि निरुक्तं[1] च लिखितं तत्र द्रष्टव्यम्। तथा तदेवाग्निस्तदादित्य० इति यजुर्मन्त्रश्च[2]। तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियं॑ जिन्व॒मव॑से हूमहे व॒यम्। पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा-मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥ १ ॥ ऋ० अ० १। अ० ६। व० १५। मं० ५ ॥ हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ आसीत्। स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ऋ० अ० ८। अ० ७। व० ३। मं० १ ॥ इत्यादयो नव मन्त्रा एतद्विषयाः सन्ति। प्रतद्वो॑चेद॒मृतं॒ नु वि॒द्वान् ग॑न्ध॒र्वो धाम॒ विभृ॑तं॒ गुहा॒ सत्। त्रीणि॑ प॒दानि॒ निहि॑ता॒ गुहा॑स्य॒ यस्तानि॒ वेद॒ स पि॒तुः पि॒तास॑त् ॥ ३ ॥ स नो॒ बन्धु॑र्जनि॒ता स वि॑धा॒ता धामा॑नि॒ वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑। यत्र॑ दे॒वा अ॒मृत॑मानशा॒नास्तृ॒तीये॒ धाम॑न्न॒ध्यैर॑यन्त ॥ ४ ॥

१ निरु० अ० ७। खं० १८ ॥ २ अ० ३२ मं० १ ॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥ ५ ॥ य० अ० ३२ । मं० ६ । १० । ११ ॥ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ६ ॥ य० अ० ३१ । मं० १८ ॥ तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ७ ॥ य० अ० ४० । मं० ५ ॥ स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमित्यादि च ॥ य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होतान्यसीदत् पिता नः । स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ २॥ आविवेश ॥ ८ ॥ किꣳ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित् कथासीत् । यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ ९ ॥ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ १० ॥ य० अ० १७ । मं० १७ । १८ । १९ ॥ इत्यादयो मन्त्रा यजुषि बहवः सन्ति । तथा सामवेदस्योत्तरार्चिके त्रिकम् ११ । अभित्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ ११ ॥ न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यंतस्त्वा हवामहे ॥ १२ ॥ इत्यादयश्च ॥ नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत् । किमावरीवः कुहकस्य शर्म्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥ १३ ॥ इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न । यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ १४ ॥ इत्यन्ताः सप्त मन्त्रा ऋग्वेदे ॥ अ० ८ । अ० ७ । व० १७ । मं० १ । ७ ॥ यत्परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् । कियता स्कम्भः प्रविवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत्तद्बभूव ॥ १५ ॥ यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता । यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिता स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १६ ॥ अथर्व० कां० १० । अनु० ४ । मं० ८ । १२ ॥ इत्यादयोऽथर्ववेदेपि बहवो मन्त्राः सन्ति । एतेषां मन्त्राणां मध्यात्केषांचिदर्थः पूर्वं प्रकाशितः केषांचिदग्रे विधास्यतेऽत्राप्रसङ्गान्नोच्यते । अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ १ ॥ अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।

१—यजुर्वेद अ० ४० ॥ मं० ८ ॥

अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ २ ॥ यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ ३ ॥ एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं ये नु पश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ ४ ॥ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ ५ ॥ इति कठवल्ल्युपनिषदि ॥ दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रोऽक्षरात्परतः परः ॥ ६ ॥ यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि । दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥ ७ ॥ इति मुण्डकोपनिषदि ॥ नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ ८ ॥ इति माण्डूक्योपनिषदि ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायाम् । परमे व्योमन्त्सोऽश्नुते सर्वान्कामान् ब्रह्मणा[1] सह विपश्चितेति ॥ ९ ॥ इति तैत्तिरीयोपनिषदि ॥ यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम् । भूमात्वेव विजिज्ञासितव्य इति । यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा ॥ अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पम् । यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यं । स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि ॥ इति छान्दोग्योपनिषदि ॥ वेदोक्तेशानादिविशेषणप्रतिपादितोऽणोरणीयानित्याद्युपनिषदुक्तविशेषणप्रतिपादितश्च यः परमेश्वरोऽस्ति, स एवाऽऽर्य्यैः सृष्टिमारभ्याद्यपर्य्यन्तं यथावद्विदित्वोपासितोऽस्तीति मन्यध्वम् । एवं परब्रह्मविषयप्रकाशकेषु प्रमाणेषु सत्सु भट्टमोक्षमूलरेरुक्तमार्य्याणां पूर्वमीश्वरज्ञानं नासीत्पुनः क्रमाज्जातमिति न तच्छिष्टग्रहणार्हमस्तीति विजानीमः ।

भाषार्थ

(इन्द्रं मित्रम्०) इस में चारों वेद, शतपथ आदि चारों ब्राह्मण, निरुक्त और छः शास्त्र आदि के अनेक प्रमाण हैं कि जिस सद्वस्तु ब्रह्म के इन्द्र, ईशान, अग्नि आदि वेदोक्त नाम हैं और अणोरणीयान् इत्यादि उपनिषदों के विशेषणों से जिसका प्रतिपादन किया है उसी की उपासना आर्य्य लोग सदा से करते आये हैं । इन मन्त्रों में से जिनका अर्थ भूमिका में नहीं किया है उन का आगे वेदभाष्य में किया

[1] सह ब्रह्मणेत्युपलभ्यमानोपनिषदि पाठः ॥

जायगा और कोई २ आर्य्य लोग किंवा यूरोप आदि देशों में रहनेवाले अंगरेज़ कहते हैं कि प्राचीन आर्य्य लोग अनेक देवताओं और भूतों की पूजा करते थे। यह उनका कहना व्यर्थ है, क्योंकि वेदों और उनके प्राचीन व्याख्यानों में अग्नि आदि नामों से उपासना के लिये एक परमेश्वर का ही ग्रहण किया है, जिसकी उपासना आर्य्य लोग करते थे, इससे पूर्वोक्त शङ्का किसी प्रकार से नहीं आसकती।

किंच हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पति० एतन्मन्त्रव्याख्यानावसरेऽयं मन्त्रोऽर्वाचीनोस्ति छन्दस इति शारमण्यदेशोत्पन्नैर्भट्टमोक्षमूलरैः स्वकीयसंस्कृतसाहित्याख्ये ग्रन्थ एतद्विषये यदुक्तं तन्न संगच्छते। यच्च वेदानां द्वौ भागावेकश्छन्दो, द्वितीयो मन्त्रश्च। तत्र यत्सामान्यार्थाभिधानं परबुद्धिप्रेरणाजन्यं स्वकल्पनया रचनाभावं, यथाह्यज्ञानिनो मुखादकस्मान्निस्सरेदीदृशं यद्वचनं तच्छन्द इति विज्ञेयम्। तस्योत्पत्तिसमय एकत्रिंशच्छतानि वर्षाण्यधिकाधिकानि व्यतीतानि। तथैकोनत्रिंशच्छतानि वर्षाणि मन्त्रोत्पत्तौ चेत्यनुमानं तेषामस्ति। तत्र तैरुक्तानि प्रमाणानि। अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुतेत्यादीनि ज्ञातव्यानि। तदिदमप्यन्यथास्ति। कुतः। हिरण्यगर्भशब्दस्यार्थज्ञानाभावात्। अत्र प्रमाणानि। ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेषोऽमृतꣳ हिरण्यम्॥ श० कां० ६। अ० ७॥ केशी केशा रश्मयस्तैस्तद्वान्भवति काशनाद्वा प्रकाशनाद्वा केशीदं ज्योतिरुच्यते॥ नि० अ० १२। खं० २५॥ यशो वै हिरण्यम्॥ ऐ० पं० ७। अ० ३॥ ज्योतिरेवायं पुरुष इत्यात्मज्योतिः॥ श० कां० १४। अ० ७॥ ज्योतिरिन्द्राग्नी॥ श० कां० १०। अ० ४॥ एषामर्थः। ज्योतिर्विज्ञानं गर्भः स्वरूपं यस्य स हिरण्यगर्भः। एवं च ज्योतिर्हिरण्यं प्रकाशो, ज्योतिरमृतं मोक्षो, ज्योतिरादित्यादयः केशाः प्रकाशका लोकाश्च यशः सत्कीर्तिर्धन्यवादश्च, ज्योतिरात्मा जीवश्च, ज्योतिरिन्द्रः सूर्य्योऽग्निश्चैतत्सर्वं हिरण्याख्यं गर्भे सामर्थ्ये यस्य स हिरण्यगर्भः परमेश्वरः। अतो हिरण्यगर्भशब्दप्रयोगाद्वेदानामुत्तमत्वं सनातनत्वं तु निश्चीयते न नवीनत्वं च। अस्मात्कारणाद्यत्तैरुक्तं हिरण्यगर्भशब्दप्रयोगान्मन्त्रभागस्य नवीनत्वं तु द्योतितं भवति, किन्त्वस्य प्राचीनत्वे किमपि प्रमाणं नोपलभामह इति। तद्भ्रममूलमेव विज्ञेयम्। यच्चोक्तं मन्त्रभागनवीनत्वे अग्निः पूर्वेभिरित्यादिकारणं तदपि तादृशमेव। कुतः। ईश्वरस्य त्रिकालदर्शित्वात्। ईश्वरो हि त्रीन्कालान् जानाति। भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालस्थैर्मन्त्रद्रष्टृभिर्मनुष्यैर्मन्त्रैः प्राणैस्तर्कैश्चर्षिभिरहमेवेड्यो बभूव भवामि भविष्यामि चेति विदित्त्वेदमुक्तमित्यदोषः।

अन्यच्च । ये वेदादिशास्त्राण्यधीत्य विद्वांसो भूत्वाऽध्यापयन्ति ते प्राचीनाः । ये चाधीयते ते नवीनाः । तैर्ऋषिभिरग्निः परमेश्वर एवेड्योस्त्यतश्च ।

भाषार्थ

इसी विषय में डाक्टर मोक्षमूलर साहेब ने अपने बनाये संस्कृत साहित्य ग्रन्थ में ऐसा लिखा है कि आर्य्य लोगों को क्रम से अर्थात् बहुत काल के पीछे ईश्वर का ज्ञान हुआ था और वेदों के प्राचीन होने में एक भी प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु उन के नवीन होने में तो अनेक प्रमाण पाये जाते हैं । इस में एक तो हिरण्यगर्भ शब्द का प्रमाण दिया है कि छन्दोभाग से मन्त्रभाग दोसौ वर्ष पीछे बना है, और दूसरा यह है कि वेदों में दो भाग हैं एक तो छन्द और दूसरा मन्त्र । उन में से छन्दोभाग ऐसा है जो सामान्य अर्थ के साथ सम्बन्ध रखता है और दूसरे की प्रेरणा से प्रकाशित हुआ मालूम पड़ता है, कि जिसकी उत्पत्ति बनानेवाले की प्रेरणा से नहीं हो सकती और उस में कथन इस प्रकार का है जैसे अज्ञानी के मुख से अकस्मात् वचन निकला हो । उस की उत्पत्ति में (३१००) इकतीससौ वर्ष व्यतीत हुए हैं और मन्त्रभाग की उत्पत्ति में (२९००) उनतीससौ वर्ष हुए हैं । उस में (अग्निः पूर्वेभिः०) इस मन्त्र का भी प्रमाण दिया है । सो उन का यह कहना ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि उन्होंने (हिरण्यगर्भः०) और (अग्निः पूर्वेभिः०) इन दोनों मन्त्रों का अर्थ यथावत् नहीं जाना है । तथा मालूम होता है कि उन को हिरण्यगर्भ शब्द नवीन जान पड़ा होगा इस विचार से कि हिरण्य नाम है सोने का, वह सृष्टि से बहुत पीछे उत्पन्न हुआ है, अर्थात् मनुष्यों की उन्नति, राजा और प्रजा के प्रबन्ध होने के उपरान्त पृथिवी में से निकाला गया है । सो यह बात भी उन की ठीक नहीं हो सकती, क्योंकि इस शब्द का अर्थ यह है कि ज्योति कहते हैं विज्ञान को, सो जिसके गर्भ अर्थात् स्वरूप में है, ज्योति अमृत अर्थात् मोक्ष है सामर्थ्य में जिस के, और ज्योति जो प्रकाशस्वरूप सूर्य्यादिलोक जिस के गर्भ में हैं, तथा ज्योति जो जीवात्मा जिस के गर्भ अर्थात् सामर्थ्य में है, तथा यशः सत्कीर्ति जो धन्यवाद जिस के स्वरूप में है, इसी प्रकार ज्योति, इन्द्र अर्थात् सूर्य, वायु और अग्नि ये सब जिस के सामर्थ्य में हैं ऐसा जो एक परमेश्वर है उसी को हिरण्यगर्भ कहते हैं । इस हिरण्यगर्भ शब्द के प्रयोग से वेदों का उत्तमपन और सनातनपन तो यथावत् सिद्ध होता है, परन्तु इस से उन का नवीनपन सिद्ध कभी नहीं हो सकता । इस से

डाक्टर मोक्षमूलर साहेब का कहना जो वेदों के नवीन होने के विषय में है सो सत्य नहीं है। और जो उन्होंने (अग्निः पूर्वेभिः०) इस का प्रमाण वेदों के नवीन होने में दिया है सो भी अन्यथा है, क्योंकि इस मन्त्र में वेदों के कर्त्ता, त्रिकालदर्शी ईश्वर ने भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जान के कहा है कि वेदों को पढ़ के जो विद्वान् हो चुके हैं वा जो पढ़ते हैं वे प्राचीन और नवीन ऋषि लोग मेरी स्तुति करें। तथा ऋषि नाम मन्त्र, प्राण और तर्क का भी है, इनसे ही मेरी स्तुति करनी योग्य है इसी अपेक्षा से ईश्वर ने इस मन्त्र का प्रयोग किया है। इससे वेदों का सनातनपन और उत्तमपन तो सिद्ध होता है, किन्तु उन हेतुओं से वेदों का नवीन होना किसी प्रकार से सिद्ध नहीं हो सकता, इसी हेतु से डाक्टर मोक्षमूलर साहेब का कहना ठीक नहीं।

अत्र निरुक्तेपि प्रमाणम्। तत्प्रकृतीतरद्वर्त्तनसामान्यादित्ययं मन्त्रार्थाभ्यूहोऽभ्यूढोपि श्रुतितोपि तर्कतो, न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः, प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्या, नह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा, पारोवर्य्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवतीत्युक्तं पुरस्ता,न्मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन्को न ऋषिर्भविष्यतीति तेभ्य, एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन् मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढं तस्माद्यदेव किं चानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद्भवति ॥ नि० अ० १३। खं० १२॥ अस्यार्थः। (तत्प्रकृती०) तस्य मन्त्रसमूहस्य पदशब्दाक्षरसमुदायानामितरत् परस्परं विशेष्यविशेषणतया सामान्यवृत्तौ वर्त्तमानानां मन्त्राणामर्थज्ञानचिन्ता भवति। कोयं खल्वस्य मन्त्रस्यार्थो भविष्यतीत्यभ्यूहो बुद्ध्याभिमुख्येनोहो विशेषज्ञानार्थस्तर्को मनुष्येण कर्त्तव्यः। नैते श्रुतितः श्रवणमात्रेणैव तर्कमात्रेण च पृथक् २ मन्त्रार्था निर्वक्तव्याः। किन्तु प्रकरणानुकूलतया पूर्वापरसंबन्धेनैव नितरां वक्तव्याः। किंच नैवैतेषु मन्त्रेष्वनृषेरतपसोऽशुद्धान्तःकरणस्याविदुषः प्रत्यक्षं ज्ञानं भवति। न यावद्धा पारोवर्य्यवित्सु कृतप्रत्यक्षमन्त्रार्थेषु मनुष्येषु भूयोविद्यो बहुविद्यान्वितः प्रशस्योऽत्युत्तमो विद्वान् भवति। न तावदभ्यूढः सुतर्केण वेदार्थमपि वक्तुमर्हतीत्युक्तं सिद्धमस्ति। अत्रेतिहासमाह। पुरस्तात्कदाचिन्मनुष्या ऋषिषु मन्त्रार्थद्रष्टृषूत्क्रामत्स्वतीतेषु सत्सु देवान् विदुषोऽब्रुवन्नपृच्छन् कोऽस्माकं मध्ये ऋषिर्भविष्यतीति। तेभ्यः सत्यासत्यविज्ञानेन वेदार्थबोधार्थं चैतं तर्कमृषिं ते

१–मन्त्रार्थेति पदस्य परस्ताच्चिन्तेति पदमधिकं निरुक्ते ॥

प्रायच्छन् दत्तवन्तोऽयमेव युष्मासु ऋषिर्भविष्यतीत्युत्तरमुक्तवन्तः। कथंभूतं सं तर्कं ? मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्। मन्त्रार्थविज्ञानकारकम्। अतः किं सिद्धं ? यः कश्चिदनूचानो, विद्यापारगः, पुरुषोऽभ्यूहति, वेदार्थमभ्यूहते, प्रकाशयते, तदेवार्षमृषिप्रोक्तं वेदव्याख्यानं भवतीति मन्तव्यम्। किंच यदल्पविद्येनाल्पबुद्धिना, पक्षपातिना मनुष्येण चाभ्यूह्यते तदनार्षमनृतं भवति। नैतत्केनाप्यादर्त्तव्यमिति। कुतः। तस्यानर्थयुक्तत्वात्। तदादरेण मनुष्याणामप्यनर्थापत्तेश्चेति। अतः पूर्वेभिः प्राक्तनैः प्रथमोत्पन्नैस्तर्कैर्ऋषिभिस्तथा नूतनैर्वर्त्तमानस्थैश्चोतापि भविष्यद्भिश्च त्रिकालस्थैरग्निः परमेश्वर एवेड्योऽस्ति। नैवास्माद्भिन्नः कश्चित्पदार्थः कस्यापि मनुष्यस्येड्यः, स्तोतव्य, उपास्योऽस्तीति निश्चयः। एवमग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुतेत्यस्य मन्त्रस्यार्थसंगतेर्नैव वेदेष्वर्वाचीनाख्यः कश्चिद् दोषो भवितुमर्हतीति।

भाषार्थ

इस में विचारना चाहिये कि वेदों के अर्थ को यथावत् विना विचारे उन के अर्थ में किसी मनुष्य को हठ से साहस करना उचित नहीं, क्योंकि जो वेद सब विद्याओं से युक्त हैं, अर्थात् उन में जितने मन्त्र और पद हैं वे सब सम्पूर्ण सत्यविद्याओं के प्रकाश करने वाले हैं और ईश्वर ने वेदों का व्याख्यान भी वेदों मे ही कर रक्खा है, क्योंकि उन के शब्द धात्वर्थ के साथ योग रखते हैं। इस में निरुक्त का भी प्रमाण है, जैसा कि यास्कमुनि ने कहा है (तत्प्रकृतीत०) इत्यादि। वेदों के व्याख्यान करने के विषय में ऐसा समझना कि जब तक सत्य प्रमाण, सुतर्क, वेदों के शब्दों का पूर्वापर प्रकरणों, व्याकरण आदि वेदाङ्गों, शतपथ आदि ब्राह्मणों, पूर्वमीमांसा आदि शास्त्रों और शास्त्रान्तरों का यथावत् बोध न हो, और परमेश्वर का अनुग्रह, उत्तम विद्वानों की शिक्षा, उन के सङ्ग से पक्षपात छोड़ के आत्मा की शुद्धि न हो, तथा महर्षि लोगों के किये व्याख्यानों को न देखे, तबतक वेदों के अर्थ का यथावत् प्रकाश मनुष्य के हृदय में नहीं होता। इसलिये सब आर्य्य विद्वानों का सिद्धान्त है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से युक्त जो तर्क है वही मनुष्यों के लिये ऋषि है। इससे यह सिद्ध होता है कि जो सायणाचार्य्य और महीधरादि अल्पबुद्धि लोगों के झूठे व्याख्यानों को देख के आजकल के आर्य्यावर्त्त और यूरोपदेश के निवासी लोग जो वेदों के ऊपर अपनी २ देशभाषाओं में व्याख्यान करते हैं वे ठीक २ नहीं हैं, और उन अनर्थयुक्त व्याख्यानों के मानने से मनुष्यों को अत्यन्त दुःख प्राप्त होता है। इससे

बुद्धिमानों को उन व्याख्यानों का प्रमाण करना योग्य नहीं । तर्क का नाम ऋषि होने से सब आर्य्य लोगों का सिद्धान्त है कि सब कालों में अग्नि जो परमेश्वर है वही उपासना करने के योग्य है ।

अन्यच्च । प्राणा वा ऋषयो दैव्यासः ॥ ऐ० पं० २ । अ० ४ ॥ पूर्वेभिः पूर्वकालावस्थास्थैः कारणस्थैः प्राणैः कार्य्यद्रव्यस्थैर्नूतनैश्चर्षिभिः सहैव समाधियोगेन सर्वैर्विद्वद्भिरग्निः परमेश्वर एवेड्योस्त्यनेन श्रेयो भवतीति मन्तव्यम् ।

भाषार्थ

जगत् के कारण प्रकृति में जो प्राण हैं उन को प्राचीन और उस के कार्य्य में जो प्राण हैं उन को नवीन कहते हैं । इसलिये सब विद्वानों को उन्हीं ऋषियों के साथ योगाभ्यास से अग्निनामक परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी योग्य है । इतने से ही समझना चाहिये कि भट्ट मोक्षमूलर साहेब आदि ने इस मन्त्र का अर्थ ठीक २ नहीं जाना है ।

यच्चोक्तं छन्दोमन्त्रयोर्भेदोस्तीति, तदप्यसंगतम् । कुतः । छन्दोवेदनिगममन्त्रश्रुतीनां पर्य्यायवाचकत्वात् । तत्र छन्दोऽनेकार्थवाचकमस्ति । वैदिकानां गायत्र्यादिवृत्तानां लौकिकानामार्य्यादीनां च वाचकम् । क्वचित्स्वातन्त्र्यस्यापि । अत्राहुर्यास्काचार्य्याः । मन्त्रा मननाच्छन्दांसिच्छादनात्स्तोमः स्तवनाद्यजुर्यजतेः साम संमितमृचा ॥ नि० अ० ७ । खं० १२ ॥ अविद्यादिदुःखानां निवारणात्सुखैराच्छादनाच्छन्दो वेदः । तथा चन्देरादेश्च छः इत्यौणादिकं सूत्रम् । चदि आल्हादने दीप्तौ चेत्यस्माद्धातोरसुन्प्रत्यये परे चकारस्यच्छकारादेशे च कृते छन्दस् इति शब्दो भवति । वेदाध्ययनेन सर्वविद्याप्राप्तेर्मनुष्य आल्हादो भवति, सर्वार्थज्ञाता चातश्छन्दो वेदः । छन्दांश्सि वै देवा वयोनाधाश्छन्दोभिर्हीद२ सर्वं वयुनं नद्धम् ॥ श० कां० ८ । अ० २ ॥ एता वै देवताश्छन्दांसि ॥ श० कां० ८ । अ० ३ ॥ अस्यायमभिप्रायः । मत्रि गुप्तपरिभाषणे, अस्माद्धलश्चेति सूत्रेण घञ्प्रत्यये कृते मन्त्रशब्दस्य सिद्धिर्जायते । गुप्तानां पदार्थानां भाषणं यस्मिन्वर्त्तते स मन्त्रो वेदः । तदवयवानामनेकार्थानामपि मन्त्रसंज्ञा भवति, तेषां तदर्थवत्त्वात् । तथा मन ज्ञाने, अस्माद्धातोः सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् इत्युणादिसूत्रेण ष्ट्रन्प्रत्यये कृते मन्त्रशब्दो व्युत्पद्यते । मन्यन्ते ज्ञायन्ते सर्वैर्मनुष्यैः सत्याः

पदार्था येन यस्मिन्वा स मन्त्रो वेदः । तदवयवा अग्निमीळे पुरोहितमित्यादयो मन्त्रा गृह्यन्ते । यानि गायत्र्यादीनि छन्दांसि तदन्विता मन्त्राः सर्वार्थद्योतकत्वा-द्देवताशब्देन गृह्यन्ते । अतश्च छन्दांस्येव देवाः वयोनाधाः सर्वक्रियाविद्यानिबन्ध-नास्तैश्छन्दोभिरेव वेदैर्देवैर्मन्त्रैश्चेदं सर्वं विश्वं वयुनं कर्मादि चेश्वरेण नद्धं बद्धं कृतमिति विज्ञेयम् । येन छन्दसा छन्दोभिर्वा सर्वा विद्याः संवृता आवृताः सम्यक् स्वीकृता भवन्ति । तस्माच्छन्दांसि वेदा, मननान्मन्त्राश्चेति पर्यायौ । एवं श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेय इति मनुस्मृतौ, इत्यपि निगमो भवतीति निरुक्ते । श्रुतिर्वेदो मन्त्रश्च, निगमो वेदो मन्त्रश्चेति पर्य्यायौ स्तः । श्रूयन्ते वा सकला विद्या यया सा श्रुति,-र्वेदो मन्त्राश्च श्रुतयः । तथा निगच्छन्ति नितरां जानन्ति प्राप्नुवन्ति वा सर्वा विद्या यस्मिन् स निगमो वेदो मन्त्रश्चेति ।

भाषार्थ

जैसे छन्द और मन्त्र ये दोनों शब्द एकार्थवाची अर्थात् संहिता भाग के नाम हैं, वैसे ही निगम और श्रुति भी वेदों के नाम हैं । भेद होने का कारण केवल अर्थ ही है । वेदों का नाम छन्द इसलिये रक्खा है कि वे स्वतन्त्रप्रमाण और सत्यविद्याओं से परिपूर्ण हैं । तथा उन का मन्त्र नाम इसलिये है कि उन से सत्यविद्याओं का ज्ञान होता है । और श्रुति इसलिये कहते हैं कि उनके पढ़ने, अभ्यास करने और सुनने से सब सत्यविद्याओं को मनुष्य लोग जान सकते हैं । ऐसे ही जिस करके सब पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो उस को निगम कहते हैं । इससे यह चारों शब्द पर्याय अर्थात् एक अर्थ के वाची हैं, ऐसा ही जानना चाहिये ।

तथा व्याकरणेपि । मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः ॥ १ ॥ अष्टाध्याय्याम् ॥ अ० २ । पा० ४ । सू० ८० ॥ छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ॥ २ ॥ अ० ३ । पा० ४ । सू० ६ ॥ वा षपूर्वस्य निगमे ॥ ३ ॥ अ० ६ । पा० ४ । सू० ६ ॥ अत्रापिच्छन्दोमन्त्रनिगमाः पर्य्यायवाचिनः सन्ति । एवं छन्दआदीनां पर्यायसिद्धेर्यो भेदं ब्रूते तद्वचनमप्रमाणमेवास्तीति विज्ञायते ।

भाषार्थ

वैसे ही अष्टाध्यायी व्याकरण में भी छन्द, मन्त्र और निगम ये तीनों नाम वेदों ही के हैं । इसलिये जो लोग इनमें भेद मानते हैं उनका वचन प्रमाण करने के योग्य नहीं ।

इति वेदविषयविचारः

अथ वेदसंज्ञाविचारः

अथ कोयं वेदो नाम ? मन्त्रभागसंहितेत्याह । किञ्च मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति कात्यायनोक्तेर्ब्राह्मणभागस्यापि वेदसंज्ञा कुतो न स्वीक्रियत इति ? । मैवं वाच्यम् । न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा भवितुमर्हति । कुतः । पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद्वेदव्याख्यानादृषिभिरुक्तत्वादनीश्वरोक्तत्वात्कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वीकृतत्वान्मनुष्यबुद्धिरचितत्त्वाच्चेति ।

भाषार्थ

प्र०—वेद किनका नाम है ? उ०—मन्त्रसंहिताओं का । प्र०—जो कात्यायन ऋषि ने कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद है, फिर ब्राह्मणभाग को भी वेदों में ग्रहण आप लोग क्यों नहीं करते हैं ? उ०—ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हो सकते, क्योंकि उन्हीं का नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी भी है । वे ईश्वरोक्त नहीं हैं, किन्तु महर्षि लोगों के किये वेदों के व्याख्यान हैं । एक कात्यायन को छोड़ के किसी अन्य ऋषि ने उन के वेद होने में साक्षी नहीं दी है, और वे देहधारी पुरुषों के बनाये हैं । इन हेतुओं से ब्राह्मणग्रन्थों की वेदसंज्ञा नहीं हो सकती, और मन्त्रसंहिताओं का वेद नाम इसलिये है कि ईश्वररचित और सब विद्याओं का मूल है ।

यथा ब्राह्मणग्रन्थेषु मनुष्याणां नामलेखपूर्वका लौकिका इतिहासाः सन्ति न चैवं मन्त्रभागे । किंच भोः । त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ १ ॥ यजु० अ० ३ । मं० ६२ ॥ इत्यादीनि वचनान्यृषीणां नामाङ्कितानि यजुर्वेदादिष्वपि दृश्यन्ते । अनेनेतिहासादिविषये मन्त्रब्राह्मणयोस्तुल्यता दृश्यते पुनर्ब्राह्मणानामपि वेदसंज्ञा कुतो न मन्यते ? । मैवं भ्रमि । नैवात्र जमदग्निकश्यपौ देहधारिणो मनुष्यस्य नाम्नी स्तः । अत्र प्रमाणम् । चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदनेन जगत्पश्यत्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः ॥ श० कां० ८ । अ० १ ॥ कश्यपो वै कूर्मः, प्राणो वै कूर्मः ॥ शत० कां० ७ । अ० ५ । अनेन प्राणस्य कूर्मः कश्यपश्च संज्ञास्ति । शरीरस्य नाभौ तस्य कूर्माकारावस्थितेः । अनेन मन्त्रेणेश्वर एव प्रार्थ्यते तद्यथा—हे जगदीश्वर! भवत्कृपया

नोऽस्माकं जमदग्निसंज्ञकस्य चक्षुषः कश्यपाख्यस्य प्राणस्य च त्र्यायुषं त्रिगुणमर्थात् त्रीणि शतानि वर्षाणि यावत्तावदायुरस्तु । चक्षुरित्युपलक्षणमिन्द्रियाणां, प्राणो मनआदीनां च (यद्देवेषु त्र्यायुषम्) अत्र प्रमाणम् । विद्वाꣳसो हि देवाः ॥ श० कां० ३ । अ० ७ ॥ अनेन विदुषां देवसंज्ञास्ति । देवेषु विद्वत्सु यद्विद्याप्रभावयुक्तं त्रिगुणमायुर्भवति (तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्) तत्सेन्द्रियाणां समनस्कानां नोऽस्माकं पूर्वोक्तं सुखयुक्तं त्रिगुणमायुरस्तु भवेत् । येन सुखयुक्ता वयं तावदायुर्भुञ्जीमहि । अनेनान्यदप्युपदिश्यते । ब्रह्मचर्यादिसुनियमैर्मनुष्यैरेतत्त्रिगुणमायुः कर्तुं शक्यमस्तीति गम्यते । अतोऽर्थाभिधायकैर्जमदग्न्यादिभिः शब्दैरर्थमात्रं वेदेषु प्रकाश्यते । अतो नात्र मन्त्रभागे हीतिहासलेशोऽप्यस्तीत्यवगन्तव्यम् । अतो यच्च सायणाचार्य्यादिभिर्वेदप्रकाशादिषु यत्र कुत्रेतिहासवर्णनं कृतं तद् भ्रममूलमस्तीति मन्तव्यम् ।

भाषार्थ

प्र०—जैसे ऐतरेय आदि ब्राह्मणग्रन्थों में याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी, गार्गी और जनक आदि के इतिहास लिखे हैं, वैसे ही (त्र्यायुषं जमदग्नेः०) इत्यादि वेदों में भी पाये जाते हैं, इससे मन्त्र और ब्राह्मणभाग ये दोनों बराबर होते हैं, फिर ब्राह्मणग्रन्थों को वेदों में क्यों नहीं मानते हो ? उ०—ऐसा भ्रम मत करो, क्योंकि जमदग्नि और कश्यप ये नाम देहधारी मनुष्यों के नहीं हैं । इस का प्रमाण शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि चक्षु का नाम जमदग्नि और प्राण का नाम कश्यप है । इस कारण से यहां प्राण से अन्तःकरण और आंख से सब इन्द्रियों का ग्रहण करना चाहिये । अर्थात् जिनसे जगत् के सब जीव बाहर और भीतर देखते हैं । (त्र्यायुषं ज०) सो इस मंत्र से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि हे जगदीश्वर ! आप के अनुग्रह से हमारे प्राण आदि अन्तःकरण और आंख आदि सब इन्द्रियों की (३००) तीनसौ वर्ष तक उमर बनी रहे, (यद्देवेषु०) सो जैसी विद्वानों के बीच में विद्यादि शुभगुण और आनन्दयुक्त उमर होती है (तन्नो अस्तु०) वैसी ही हम लोगों की भी हो, तथा (त्र्यायुषं जमदग्नेः०) इत्यादि उपदेश से यह भी जाना जाता है कि मनुष्य ब्रह्मचर्य्यादि उत्तम नियमों से त्रिगुण चतुर्गुण आयु कर सकता है, अर्थात् (४००) चारसौ वर्ष तक भी सुखपूर्वक जी सकता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि वेदों में सत्य अर्थ के वाचक शब्दों से सत्यविद्याओं का प्रकाश किया है, लौकिक इतिहासों

का नहीं । इससे जो सायणाचार्यादि लोगों ने अपनी २ बनाई टीकाओं में वेदों में जहां तहां इतिहास वर्णन किये हैं वे सब मिथ्या हैं ।

तथा ब्राह्मणग्रन्थानामेव पुराणेतिहासादिनामास्ति न ब्रह्मवैवर्तश्रीमद्भागवतादीनां चेति निश्चीयते । किंच भोः । ब्रह्मयज्ञविधाने यत्र क्वचिद् ब्राह्मणसूत्रग्रन्थेषु यद्ब्राह्मणानीतिहासान्पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरित्यादीनि वचनानि दृश्यन्ते एषां मूलमथर्ववेदेप्यस्ति । स बृह॒तीं दिश॒मनु॒व्यचलत् । तमितिहा॒सश्च॑ पुरा॒णं च॒ गाथाश्च नाराश॒ंसीश्चानु॒व्य॑चलन् । इ॒ति॒हा॒सस्य॑ च॒ वै स पु॒रा॒णस्य॑ च॒ गाथानां च नाराश॒ंसीनां च प्रि॒यं धाम॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ १ ॥ अथर्व० कां० १५ । प्रपा० ३० । अनु० १ । मं० ४ ॥ अतो ब्राह्मणग्रन्थेभ्यो भिन्ना भागवतादयो ग्रन्था इतिहासादिसंज्ञया कुतो न गृह्यन्ते ? । मैवं वाचि । एतैः प्रमाणैर्ब्राह्मणग्रन्थानामेव ग्रहणं जायते न श्रीमद्भागवतादीनामिति । कुतः । ब्राह्मणग्रन्थेष्वितिहासादीनामन्तर्भावात् । तत्र देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासा ग्राह्याः । स देव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ छान्दोग्योपनि० प्रपा० ६ ॥ आत्मा वा इदमेकमेवाग्र आसीन्नान्यत् किंचनमिषत् ॥ इत्यैतरेयारण्यकोपनि० अ० १ । खं० १ ॥ आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास ॥ श० कां० ११ । अ० १ ॥ इदं वा अग्रे नैव किंचिदासीत् । इत्यादीनि जगतः पूर्वावस्थाकथनपूर्वकाणि वचनानि ब्राह्मणान्तर्गतान्येव पुराणानि ग्राह्याणि । कल्पा मन्त्रार्थसामर्थ्यप्रकाशकाः । तद्यथा । इषेत्वोर्जेत्वेति वृष्ट्यै तदाह । यदाहेषेत्वेत्यूर्जेत्वेति यो वृष्टादूर्ग्रसो जायते तस्मै तदाह । सविता वै देवानां प्रसविता सवितृप्रसूताः ॥ श० कां० १ । अ० ७ ॥ इत्यादयो ग्राह्याः । गाथा याज्ञवल्क्यजनकसंवादो, यथा शतपथब्राह्मणे गार्गीमैत्रेय्यादीनां परस्परं प्रश्नोत्तरकथनयुक्ताः सन्तीति । नाराशंस्यश्च । अत्राहुर्यास्काचार्याः । नराशंसो यज्ञ इति कथक्यो[1], नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्त्यग्निरिति शाकपूणि,नरैः प्रशस्यो भवति ॥ नि० अ० ८ । खं० ६ ॥ नृणां यत्र प्रशंसा नृभिर्यत्र प्रशस्यते ता ब्राह्मणनिरुक्ताद्यन्तर्गताः कथा नाराशंस्यो ग्राह्या, नातोऽन्या इति । किंच तेषु तेषु वचनेष्वपीदमेव विज्ञायते यत् यस्माद्ब्राह्मणानीति संज्ञीपदमितिहासादिस्तेषां संज्ञेति । तद्यथा । ब्राह्मणान्येवेतिहासान् जानीयात् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीश्चेति ।

---

१ काथक्य इति निरुक्ते ।

भाषार्थ

और इस हेतु से ब्राह्मण ग्रन्थों का ही इतिहासादि नाम जानना चाहिये, श्रीमद्भागवतादि का नहीं। प्र०-जहां २ ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थों में (यद्ब्राह्मण०) इतिहास पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी इत्यादि वचन देखने में आते हैं, तथा अथर्ववेद में भी इतिहास, पुराणादि नामों का लेख है, इस हेतु से ब्राह्मणग्रन्थों से भिन्न ब्रह्मवैवर्त्त, श्रीमद्भागवत, महाभारतादि का ग्रहण इतिहास पुराणादि नामों से क्यों नहीं करते हो ? उ०-इनके ग्रहण में कोई भी प्रमाण नहीं है, क्योंकि उनमें मतों के परस्पर विरोध और लड़ाई आदि की असम्भव मिथ्या कथा अपने २ मत के अनुसार लोगों ने लिख रक्खी हैं। इससे इतिहास और पुराणादि नामों से इनका ग्रहण करना किसी मनुष्य को उचित नहीं। जो ब्राह्मण ग्रन्थों में (देवासुराः संयत्ता आसन्) अर्थात् देव विद्वान् और असुर मूर्ख ये दोनों युद्ध करने को तत्पर हुए थे इत्यादि कथाओं का नाम इतिहास है। (स देव सो०) अर्थात् जिस में जगत् की उत्पत्ति आदि का वर्णन है उस ब्राह्मण भाग का नाम पुराण है। (इषेत्वोर्जेत्वेति वृष्ट्यै०) जो वेदमन्त्रों के अर्थ अर्थात् जिन में द्रव्यों के सामर्थ्य का कथन किया है उनका नाम कल्प है। इसी प्रकार जैसे शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य, जनक, गार्गी, मैत्रेयी आदि की कथाओं का नाम गाथा है और जिन में नर अर्थात् मनुष्य लोगों ने ईश्वर, धर्म आदि पदार्थविद्याओं और मनुष्यों की प्रशंसा की है उनको नाराशंसी कहते हैं। (ब्राह्मणानीतिहासान०) इस वचन में ब्राह्मणानि संज्ञी और इतिहासादि संज्ञा है। अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी है। सो ब्राह्मण और निरुक्तादि ग्रन्थों में जो २ जैसी २ कथा लिखी हैं उन्हीं का इतिहासादि से ग्रहण करना चाहिये, अन्य का नहीं।

अन्यदप्यत्र प्रमाणमस्ति न्यायदर्शनभाष्ये। वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणात् ॥ १ ॥ अ० २। आ० २। सू० ६० ॥ अस्योपरि वात्स्यायनभाष्यम्। प्रमाणं शब्दो यथा लोके, विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविधः। अयमभिप्रायः। ब्राह्मणग्रन्थशब्दा लौकिका एव, न वैदिका इति। तेषां त्रिविधो विभागो लक्ष्यते। सू० विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात् ॥ २ ॥ अ० २। आ० २। सू० ६१ ॥ अस्योप० वा० भा०। त्रिधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि विधिवचनान्यर्थवादवचनान्यनुवचनानीति, तत्र। सू० विधिर्विधायकः ॥ ३ ॥ अ० २। आ०

२ । सू० ६२ ॥ अस्योप० वा० भा० । यद्वाक्यं विधायकं चोदकं स विधिः । विधिस्तु नियोगोऽनुज्ञा वा, यथाऽग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम इत्यादि । ब्राह्मणवाक्यानामिति शेषः । सू० स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः ॥ ४ ॥ अ० २ । आ० २ । सू० ६३ ॥ अस्योप० वा० भा० । विधेः फलवादलक्षणा या प्रशंसा सा स्तुतिः, संप्रत्ययार्थं, स्तूयमानं श्रद्दधीतेति प्रवर्त्तिका च, फलश्रवणात्प्रवर्त्तते । सर्वजिता वै देवाः सर्वमजयन्सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वस्यैतेनाप्नोति सर्वं जयतीत्येवमादि । अनिष्टफलवादो निन्दा, वर्जनार्थं, निन्दितं न समाचरेदिति । स एष वा प्रथमो यज्ञो यज्ञानां यज्ज्योतिष्टोमो, य एतेनानिष्ट्वाऽन्येन यजते गर्त्ते पतत्ययमेतज्जीर्यते वा इत्येवमादि । अन्यकर्तृकस्य व्याहतस्य विधेर्वादः परकृतिः । हुत्वा वपामेवाग्रेऽभिघारयन्ति । अथ पृषदाज्यं तदु ह चरकाध्वर्य्यवः पृषदाज्यमेवाग्रेऽभिघारयन्ति । अग्नेः प्राणाः पृषदाज्यं स्तोममित्येवमभिदधतीत्येवमादि । ऐतिह्यसमाचरितो विधिः पुराकल्प इति । तस्माद्वा एतेन ब्राह्मणा हविः पवमानं साम स्तोममस्तौषन् योनेर्यज्ञं पतनवामह इत्येवमादि । कथं परकृतिपुराकल्पौ अर्थवादा इति । स्तुतिनिन्दावाक्येनाभिसंबन्धाद्विध्याश्रयस्य कस्य कस्यचिदर्थस्य द्योतनादर्थवाद इति ।

भाषार्थ

ब्राह्मण ग्रन्थों की इतिहासादि संज्ञा होने में और भी प्रमाण हैं । जैसे लोक में तीन प्रकार के वचन होते हैं वैसे ब्राह्मण ग्रन्थों में भी हैं । उनमें से एक विधिवाक्य है । जैसे (देवदत्तो ग्रामं गच्छेत्सुखार्थम्) सुख के लिये देवदत्त ग्राम को जाय । इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में भी है (अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः) जिसको सुख की इच्छा हो वह अग्निहोत्रादि यज्ञों को करे । दूसरा अर्थवाद है, जो कि चार प्रकार का होता है । एक स्तुति, अर्थात् पदार्थों के गुणों का प्रकाश करना, जिससे मनुष्यों की श्रद्धा उत्तम काम करने और गुणों के ग्रहण में ही हो । दूसरी निन्दा, अर्थात् बुरे काम करने में दोषों का दिखलाना, जिससे उनको कोई न करे । तीसरा (परकृतिः), जैसे इस चोर ने बुरा काम किया इससे उसको दण्ड मिला और साहूकार ने अच्छा काम किया इससे उसकी प्रतिष्ठा और उन्नति हुई । चौथा (पुराकल्प), अर्थात् जो बात पहिले होचुकी हो, जैसे जनक की सभा में याज्ञवल्क्य, गार्गी,

शाकल्य, आदि ने इकट्ठे होके आपस में प्रश्नोत्तर रीति से संवाद किया था। इत्यादि इतिहासों को पुराकल्प कहते हैं।

सू०—विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः ॥ ५ ॥ अ० २ । आ० २ । सू० ६४ ॥ अस्योप० वा० भा० । विध्यनुवचनं चानुवादो, विहितानुवचनं च । पूर्वः शब्दानुवादोऽपरोऽर्थानुवादः। सू०—न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसंभवाभावप्रामाण्यात् ॥६॥ अ० २ । आ० २ । सू० १ ॥ अस्योप० वा० भा० । न चत्वार्य्येव प्रमाणानि किं तर्हि, ऐतिह्यमर्थापत्तिः संभवोऽभाव इत्येतान्यपि प्रमाणानि । इति होचुरित्यनिर्दिष्टप्रवक्तृकं प्रवादपारंपर्य्यमैतिह्यम् । अनेन प्रमाणेनापीतिहासादिनामभिर्ब्राह्मणान्येव गृह्यन्ते, नान्यदिति ।

भाषार्थ

इसका तीसरा भाग अनुवाद है। अर्थात् जिसका पूर्व विधान करके उसी का स्मरण और कथन करना। सो भी दो प्रकार का है। एक शब्द का और दूसरा अर्थ का। जैसे वह विद्या को पढ़े यह शब्दानुवाद है। विद्या पढ़ने से ही ज्ञान होता है इसको अर्थानुवाद कहते हैं। जिसकी प्रतिज्ञा उसी में हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन को घटाना हो। जैसे परमेश्वर नित्य है, यह प्रतिज्ञा है। विनाश रहित होने से यह हेतु है। आकाश के समान है इसको उदाहरण कहते हैं। जैसा आकाश नित्य है वैसा परमेश्वर भी है इसको उपनय कहते हैं। और इन चारों का क्रम से उच्चारण करके पक्ष में यथावत् योजना करने को निगमन कहते हैं, जैसे, परमेश्वर नित्य है, विनाशरहित होने से, आकाश के समान, जैसा आकाश नित्य है वैसा परमेश्वर भी। इससे इसमें समझ लेना चाहिये कि जिस शब्द और अर्थ का दूसरी वार उच्चारण और विचार हो इसको अनुवाद कहते हैं। सो ब्राह्मण पुस्तकों में यथावत् लिखा है। इस हेतु से भी ब्राह्मण पुस्तकों का नाम इतिहास आदि जानना चाहिये। क्योंकि इनमें से इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पांच प्रकार की कथा सब ठीक २ लिखी हैं, और भागवतादि को इतिहासादि नहीं जानना चाहिये, क्योंकि उनमें मिथ्या कथा बहुतसी लिखी हैं।

अन्यच्च। ब्राह्मणानि तु वेदव्याख्यानान्येव सन्ति, नैव वेदाख्यानीति। कुतः। इषेत्वोर्जेत्वेति ॥ श० कां० १ । अ० ७ ॥ इत्यादीनि मन्त्रप्रतीकानि धृत्वा ब्राह्मणेषु वेदानां व्याख्यानकरणात् ।

भाषार्थ

ब्राह्मण ग्रन्थों की वेदों में गणना नहीं हो सकती, क्योंकि (इषेत्वोर्जेत्वेति०) इस प्रकार से उनमें मन्त्रों की प्रतीक धर २ के वेदों का व्याख्यान किया है। और मन्त्रभाग संहिताओं में ब्राह्मण ग्रन्थों की एक भी प्रतीक कहीं नहीं देखने में आती। इससे जो ईश्वरोक्त मूलमन्त्र अर्थात् चार संहिता हैं वे ही वेद हैं, ब्राह्मण ग्रन्थ नहीं।

अन्यच्च महाभाष्येपि। केषां शब्दानाम् ?। लौकिकानां वैदिकानां च। तत्र लौकिकास्तावत्। गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति। वैदिकाः खल्वपि। शन्नो देवीरभिष्टये। इषेत्वोर्जेत्वा। अग्निमीळे पुरोहितम्। अग्न आयाहि वीतयइति। यदि ब्राह्मणग्रन्थानामपि वेदसंज्ञाभीष्टाभूत्तर्हि तेषामप्युदाहरणमदात्। अत एव महाभाष्यकारेण मन्त्रभागस्यैव वेदसंज्ञां मत्वा प्रथममन्त्रप्रतीकानि वैदिकेषु शब्देषूदाहृतानि। किन्तु यानि गौरश्व इत्यादीनि लौकिकोदाहरणानि दत्तानि तानि ब्राह्मणादिग्रन्थेष्वेव घटन्ते। कुतः। तेष्वीदृशशब्दपाठव्यवहारदर्शनात्। द्वितीया ब्राह्मणे ॥ १ ॥ अ० २। पा० ३ ॥ सू० ६० ॥ चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥ २ ॥ अ० २। पा० ३। सू० ६२ ॥ पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ॥ ३ ॥ अ० ४। पा० ३। सू० १०५ ॥ इत्यष्टाध्याय्यां सूत्राणि। अत्रापि पाणिन्याचार्य्यैर्वेदब्राह्मणयोर्भेदेनैव प्रतिपादितम् (?)। तद्यथा पुराणैः प्राचीनैर्ब्रह्मादृषिभिः प्रोक्ता ब्राह्मणकल्पग्रन्था वेदव्याख्यानाः सन्ति। अतएवैतेषां पुराणेतिहाससंज्ञा कृतास्ति। यद्यत्र छन्दोब्राह्मणयोर्वेदसंज्ञाभीष्टा भवेत्तर्हि चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसीति छन्दोग्रहणं व्यर्थं स्यात्। कुतः। द्वितीया ब्राह्मण इति ब्राह्मणशब्दस्य प्रकृतत्वात्। अतो विज्ञायते न ब्राह्मणग्रन्थानां वेदसंज्ञास्तीति। अतः किं सिद्धम् ? ब्रह्मेति ब्राह्मणानां नामास्ति। अत्र प्रमाणम्। ब्रह्म वै ब्राह्मणः, क्षत्रं राजन्यः ॥ श० कां० १३। अ० १ ॥ समानार्थावेतौ वृषशब्दो वृषन्शब्दश्च, ब्रह्मन्शब्दो ब्राह्मणशब्दश्च। इति व्याकरणमहाभाष्ये। अ० ५। पा० १। आ० १ ॥ चतुर्वेदविद्भिर्ब्रह्मभिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेदव्याख्यानानि तानि ब्राह्मणानि। अन्यच्च। कात्यायनेनापि ब्रह्मणा वेदेन सहचरितत्वात्सहचारोपाधिं मत्वा ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा संमतेति विज्ञायते। एवमपि न सम्यगस्ति। कुतः। एवं तेनानुक्तत्वादतोऽन्यैर्ऋषिभिरगृहीतत्वात्। अनेनापि न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा भवितुमर्हतीति। इत्यादिबहुभिः प्रमाणैर्मन्त्राणामेव वेदसंज्ञा, न ब्राह्मणग्रन्थानामिति सिद्धम्।

भाषार्थ

ब्राह्मण ग्रन्थों की वेदसंज्ञा नहीं होने में व्याकरण महाभाष्य का भी प्रमाण है, जिस में लोक और वेदों के भिन्न २ उदाहरण दिये हैं। जैसे गौरश्वः० इत्यादि लोक के और शन्नो देवीरभिष्टय इत्यादि वेदों के हैं। किन्तु वैदिक उदाहरणों में ब्राह्मणों का एक भी उदाहरण नहीं दिया और गौरश्वः इत्यादि जो लोक के उदाहरण दिये हैं वे सब ब्राह्मण पुस्तकों के हैं, क्योंकि उन में ऐसा ही पाठ है। इसी कारण से ब्राह्मण पुस्तकों की वेदसंज्ञा नहीं हो सकती। और कात्यायन के नाम से जो दोनों की वेदसंज्ञा होने में वचन है सो सहचार उपाधि लक्षणा से किया हो तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि जैसे किसी ने किसी से कहा कि उस लकड़ी को भोजन करादो, और दूसरे ने इतने ही कहने से तुरन्त जान लिया कि लकड़ी जड़ पदार्थ होने से भोजन नहीं कर सकती, किन्तु जिस मनुष्य के हाथ में लकड़ी है उसको भोजन कराना चाहिये, इस प्रकार से कहा हो तो भी मानने के योग्य नहीं हो सकता, क्योंकि इस में अन्य ऋषियों की एक भी साक्षी नहीं है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म नाम ब्राह्मण का है, सो ब्रह्मादि जो वेदों के जानने वाले महर्षि लोग थे उन्हीं के बनाये हुए ऐतरेय, शतपथ आदि वेदों के व्याख्यान हैं, इसी कारण से उनके किये ग्रन्थों का नाम ब्राह्मण हुआ है। इससे निश्चय हुआ कि मन्त्रभाग की ही वेदसंज्ञा है, ब्राह्मण ग्रन्थों की नहीं।

किञ्च भोः ब्राह्मणग्रन्थानामपि वेदवत्प्रामाण्यं कर्त्तव्यमाहोस्विन्नेति। अत्र ब्रूमः। नैतेषां वेदवत्प्रामाण्यं कर्त्तुं योग्यमस्ति। कुतः। ईश्वरोक्ताभावात्तदनुकूलतयैव प्रमाणार्हत्वाच्चेति। परन्तु सन्ति तानि परतः प्रमाणयोग्यान्येवेति।

भाषार्थ

प्र०—हम यह पूछते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों का भी वेदों के समान प्रमाण करना उचित है वा नहीं? उ०—ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमाण वेदों के तुल्य नहीं हो सकता, क्योंकि वे ईश्वरोक्त नहीं हैं। परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण के योग्य तो हैं *।

इति वेदसंज्ञाविचारः

---

* इसमें इतना भेद है कि जो ब्राह्मण ग्रन्थों में कहीं वेद से विरुद्ध हो उस का प्रमाण करना किसी को न चाहिये और ब्राह्मण ग्रन्थों से विरोध आवे तो भी वेदों का प्रमाण होता है।

अथ ब्रह्मविद्याविषयः

वेदेषु सर्वा विद्याः सन्त्याहोस्विन्नेति ? । अत्रोच्यते । सर्वाः सन्ति मूलोद्देशतः । तत्रादिमा ब्रह्मविद्या संक्षेपतः प्रकाश्यते । तमीशा॑नं जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियं॑ जिन्वमव॑से हूमहे व॒यम् । पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥ १ ॥ ऋ० अ० १ । अ० ६ । व० १५ । मं० ५ ॥ तद्विष्णोः॑ प॒र॒मं प॒दं सदा॑ पश्यन्ति सू॒रयः॑ । दि॒वी॑व॒ । चक्षु॒रात॑तम् ॥ २ ॥ ऋ० अ० १ । अ० २ । व० ७ । मं० ५ ॥ अनयोरर्थः । (तमीशानम्) ईष्टेऽसावीशानः सर्वजगत्कर्त्ता ((जगतस्तस्थुषस्पतिं) जगतो जङ्गमस्य तस्थुषः स्थावरस्य च पतिः स्वामी (धियं जिन्वम्) यो बुद्धेस्तृप्तिकर्त्ता (अवसे हूमहे वयम्) तमवसे रक्षणाय वयं हूमहे आह्वयामः (पूषा) पुष्टिकर्त्ता (नः) स एवास्माकं पुष्टिकारकोस्ति (यथा वेदसामसद्वृधे) हे परमेश्वर ! यथा येन प्रकारेण वेदसां विद्यासुवर्णादीनां धनानां वृधे वर्धनाय भवानस्ति तथैव कृपया (रक्षिताऽसत्) रक्षकोप्यस्तु । एवं (पायुरदब्धः स्वस्तये) अस्माकं रक्षणे स्वस्तये सर्वसुखाय (अदब्धः) अनलसः सन् पालनकर्त्ता सदैवास्तु ॥ १ ॥ तद्विष्णोरिति मन्त्रस्यार्थो वेदविषयप्रकरणे विज्ञानकाण्डे गदितस्तत्र द्रष्टव्यः ।

भाषार्थ

प्र०—वेदों में सब विद्या हैं वा नहीं ? । उ०—सब हैं । क्योंकि जितनी सत्य विद्या संसार में हैं वे सब वेदों से ही निकली हैं । उन में से पहिले ब्रह्मविद्या संक्षेप से लिखते हैं । (तमीशानं) जो सब जगत् का बनाने वाला है, (जगतस्तस्थुषस्पतिं) अर्थात् जगत् जो चेतन और तस्थुष जो जड़, इन दो प्रकार के संसार का जो राजा और पालन करने वाला है, (धियं जिन्वम्) जो मनुष्यों को बुद्धि और आनन्द से तृप्त करने वाला है, उस की (अवसे हूमहे वयम्) हम लोग आह्वान अर्थात् अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं, (पूषा नः) क्योंकि वह हम को सब सुखों से पुष्ट करने वाला है, (यथा वेदसामसद् वृधे) हे परमेश्वर ! जैसे आप अपनी कृपा से हमारे सब पदार्थों और सुखों को बढ़ाने वाले हैं वैसे ही (रक्षिता) सब की रक्षा भी करें (पायुरदब्धः स्वस्तये) जैसे आप हमारे रक्षक हैं वैसे ही सब सुख भी दीजिये ॥ १ ॥ (तद्विष्णो०) इस मंत्र का अर्थ वेदविषयप्रकरण के विज्ञानकाण्ड में अच्छी प्रकार लिख दिया है, वहां देख लेना ॥ २ ॥

भाष्यम्

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥ ३ ॥ य० अ० ३२ । मं० ११ ॥ (परीत्य भू०) यः परमेश्वरो भूतान्याकाशादीनि परीत्य सर्वतोभिव्याप्य, सूर्य्यादीन् लोकान् परीत्य, पूर्वादिदिशः परीत्य, आग्नेयादिप्रदिशश्च परीत्य, परितः सर्वतः इत्वा, प्राप्य, विदित्वा च । (उपस्थाय प्र०) यः स्वसामर्थ्यस्याप्यात्मास्ति, यश्च प्रथमानि सूक्ष्मभूतानि जनयति, तं परमानन्दस्वरूपं मोक्षाख्यं परमेश्वरं यो जीव आत्मना स्वसामर्थ्येनान्तःकरणेनोपस्थाय तमेवोपगतो भूत्वा, विदित्वा, चाभिसंविवेश आभिमुख्येन सम्यक् प्राप्य स एव मोक्षाख्यं सुखमनुभवतीति ।

भाषार्थ

(परीत्य भू०) जो परमेश्वर आकाशादि सब भूतों में तथा (परीत्य लोकान्) सूर्य्यादि सब लोकों में व्याप्त हो रहा है, (परीत्य सर्वाः०) इसी प्रकार जो पूर्वादि सब दिशा और आग्नेयादि उपदिशाओं में भी निरन्तर भरपूर हो रहा है, अर्थात् जिस की व्यापकता से एक अणु भी खाली नहीं है, (ऋतस्या०) जो अपने भी सामर्थ्य का आत्मा है, (प्रथमजां) और जो कल्पादि में सृष्टि की उत्पत्ति करने वाला है, उस आनन्दस्वरूप परमेश्वर को जो जीवात्मा अपने सामर्थ्य अर्थात् मन से यथावत् जानता है वही उस को प्राप्त होके (अभि०) सदा मोक्षसुख को भोगता है ॥३॥

भाष्यम्

महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे । तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥ ४ ॥ अथर्व० कां० १० । प्रपा० २३ । अनु० ४ । मं० ३८ ॥ (महद्यक्षं) यन्महत्सर्वेभ्यो महत्तरं यक्षं सर्वमनुष्यैः पूज्यम्, (भुवनस्य) सर्वसंसारस्य (मध्ये) परिपूर्णम्, (तपसि क्रान्तं) विज्ञाने वृद्धम्, (सलिलस्य) अन्तरिक्षस्य कारणरूपेण कार्यस्य प्रलयानन्तरं (पृष्ठे) पश्चात् स्थितमस्ति, तदेव ब्रह्म विज्ञेयम् (तस्मिञ्छ्र्य०) तस्मिन्ब्रह्मणि ये के चापि देवास्त्रयस्त्रिंशद्वस्वादयस्ते सर्वे तदाधारेणैव तिष्ठन्ति । कस्य का इव ? (वृक्षस्य स्कन्धः) वृक्षस्य स्कन्धे परितः सर्वतो लग्नाः शाखा इव ।

भाषार्थ

(महद्यक्षं०) ब्रह्म जो महत् अर्थात् सब से बड़ा और सब का पूज्य है, (भुवनस्य म०) जो सब लोकों के बीच में विराजमान और उपासना करने के योग्य है, (तपसि क्रान्तं) जो विज्ञानादि गुणों में सब से बड़ा है, (सलिलस्य पृष्ठे) सलिल जो अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश है उस का भी आधार और उस में व्यापक, तथा जगत् के प्रलय के पीछे भी नित्य निर्विकार रहने वाला है, (तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवाः) जिस के आश्रय से वसु आदि पूर्वोक्त तेतीस देव ठहर रहे हैं, (वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः) जैसे कि पृथिवी से वृक्ष का प्रथम अङ्कुर निकल के और वही स्थूल हो के सब डालियों का आधार होता है, इसी प्रकार सब ब्रह्माण्ड का आधार वही एक परमेश्वर है ।

भाष्यम्

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नप्युच्यते ॥ ६ ॥ न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ॥ ७ ॥ नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥ ८ ॥ तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥ ९ ॥ सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १० ॥ अथर्व० कां० १३ । अनु० ४ । मं० १६ । १७ । १८ । २० । २१ ॥ (न द्वितीय०) एतैर्मन्त्रैरिदं विज्ञायते परमेश्वर एक एवास्तीति । नैवातो भिन्नः कश्चिदपि द्वितीयः तृतीयः चतुर्थः ॥ ६ ॥ पञ्चमः षष्ठः सप्तमः ॥ ७ ॥ अष्टमो नवमो दशमश्चेश्वरो विद्यते ॥ ८ ॥ यतो नवभिर्नकारैर्द्वित्वसंख्यामारभ्य शून्यपर्य्यन्तेनैकमीश्वरं विधायास्माद्भिन्नेश्वरभावस्यातिशयतया निषेधो वेदेषु कृतोऽस्त्यतो द्वितीयस्योपासनमत्यन्तं निषिध्यते । सर्वान्तर्यामितया प्राप्तः सन्, जडं चेतनं च द्विविधं सर्वं जगत्, स एव पश्यति, नास्य कश्चिद्द्रष्टास्ति । न चायं कस्यापि दृश्यो भवितुमर्हति । येनेदं जगद्व्याप्तं तमेवं परमेश्वरमिदं सकलं जगदपि (निगतं) निश्चितं प्राप्तमस्ति । व्यापकाद्व्याप्यस्य संयोगसंबन्धत्वात् । (सहः) यतः सर्वं सहते तस्मात्स एवैष सहोऽस्ति । स खल्वेक एव वर्त्तते । न कश्चिद्द्वितीयस्तदधिकस्तत्तुल्यो वास्ति । एकशब्दस्य त्रिर्ग्रहणात् । अतः सजातीयविजातीयस्वगतभेदराहित्यमीश्वरे वर्त्तत एव, द्वितीयेश्वरस्यात्यन्तनिषेधात् । कस्मात् । एकवृदेक एवेत्युक्तत्वात् स एष एक एकवृत् । एकेन चेतनमात्रेण वस्तुनैव वर्त्तते । पुनरेक एवासहायः सन् य इदं सकलं जगद्रचयित्वा

धारयतीत्यादिविशेषणयुक्तोस्ति । तस्य सर्वशक्तिमत्त्वात् ॥ ६ ॥ अस्मिन्सर्वशक्तिमति परमात्मनि सर्वे देवाः पूर्वोक्ता वस्वादय एकवृत एकाधिकरणा एव भवन्त्यर्थात्प्रलयानन्तरमपि तत्सामर्थ्यं प्राप्यैककारणवृत्तयो भवन्ति । एवंविधाश्चान्येपि ब्रह्मविद्याप्रतिपादकाः सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमित्यादयो मन्त्रा वेदेषु बहवः सन्ति । ग्रन्थाधिक्यभिया नात्र लिख्यन्ते । किन्तु यत्र यत्र वेदेषु ते मन्त्राः सन्ति तत्तद्भाष्यकरणावसरे तत्र तत्रार्थानुदाहरिष्याम इति ।

भाषार्थ

(न द्वितीयो न०) इन सब मन्त्रों से यह निश्चय होता है कि परमेश्वर एक ही है, उससे भिन्न कोई न दूसरा, न तीसरा और न कोई चौथा परमेश्वर है ॥ ६ ॥ (न पञ्चमो न०) न पांचवां, न छठा, न कोई सातवां ईश्वर है ॥ ७ ॥ (नाष्टमो न०) न आठवां, न नवमा और न कोई दशमा ईश्वर है ॥ ८ ॥ (तमिदं०) किन्तु वह सदा एक अद्वितीय ही है, उससे भिन्न दूसरा ईश्वर कोई भी नहीं । इन मन्त्रों में जो दो से लेके दश पर्य्यन्त अन्य ईश्वर होने का निषेध किया है सो इस अभिप्राय से है कि सब संख्या का मूल एक (१) अङ्क ही है । इसी को दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ और नव वार गणने से २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ और ६ (नव) अंक बनते हैं, और एक पर शून्य देने से १० का अङ्क होता है । उनसे एक ईश्वर का निश्चय करा के वेदों में दूसरे ईश्वर के होने का सर्वथा निषेध ही लिखा है अर्थात् उसके एकपने में भी भेद नहीं और वह शून्य भी नहीं । किन्तु जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त, एकरस परमात्मा है, वही सदा से सब जगत् में परिपूर्ण होके, पृथिवी आदि सब लोकों को रच के, अपने सामर्थ्य से धारण कर रहा है । तथा वह अपने काम में किसी का सहाय नहीं लेता, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है ॥ ६ ॥ (सर्वे अस्मिन्) उसी परमात्मा के सामर्थ्य में वसु आदि सब देव अर्थात् पृथिवी आदि लोक ठहर रहे हैं और प्रलय में भी उसके सामर्थ्य में लय होके उसी में बने रहते हैं । इस प्रकार के मन्त्र वेदों में बहुत हैं । यहां उन सबके लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं, क्योंकि जहां २ वे मन्त्र आवेंगे वहां २ उनका अर्थ करदिया जायगा ।

इति ब्रह्मविद्याविषयविचारः



अथ वेदोक्तधर्मविषयः संक्षेपतः प्रकाश्यते

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ १ ॥ ऋ० अ० ८। अ० ८। व० ४६। मं० २॥

भाष्यम्

(संगच्छध्वं०) ईश्वरोऽभिवदति हे मनुष्या मयोक्तं न्याय्यं पक्षपातरहितं सत्यलक्षणोज्ज्वलं धर्मं यूयं संगच्छध्वं सम्यक् प्राप्नुत अर्थात् तत्प्राप्त्यर्थं सर्वं विरोधं विहाय परस्परं संगता भवत येन युष्माकमुत्तमं सुखं सर्वदा वर्धेत सर्वदुःखनाशश्च भवेत् (संवद०) संगता भूत्वा परस्परं जल्पवितण्डादि विरुद्धवादं विहाय संप्रीत्या प्रश्नोत्तरविधानेन संवादं कुरुत यतो युष्मासु सम्यक्सत्यविद्याद्युत्तमगुणाः सदा वर्धेरन् (संवो मनांसि जानताम्) यूयं जानन्तो विज्ञानवन्तो भवत जानतां वो युष्माकं मनांसि यथा ज्ञानवन्ति भवेयुस्तथा सम्यक् पुरुषार्थं कुरुतार्थाद्येन युष्मन्मनांसि सदानन्दयुक्तानि स्युस्तथा प्रयतध्वम्। युष्माभिर्धर्म एव सेवनीयो नाधर्मश्चेत्यत्र दृष्टान्त उच्यते (देवा भागं यथा०) यथा पूर्वे संजानाना ये सम्यग्ज्ञानवन्तो देवा विद्वांस आप्ताः पक्षपातरहिता ईश्वरधर्मोपदेशप्रियाश्चासन् युष्मत्पूर्वं विद्यामधीत्य वर्त्तन्ते किंवा ये मृतास्ते यथा भागं भजनीयं सर्वशक्तिमदादिलक्षणमीश्वरं मदुक्तं धर्मं चोपासते। तथैव युष्माभिरपि स एव धर्म उपासनीयो यतो वेदप्रतिपाद्यो धर्मो निश्शङ्कतया विदितश्च भवेत् ॥ १ ॥

भाषार्थ

अब वेदों की रीति से धर्म के लक्षणों का वर्णन किया जाता है। (संगच्छध्वं) देखो परमेश्वर हम सबों के लिये धर्म का उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो ! जो पक्षपातरहित, न्याय, सत्याचरण से युक्त धर्म है तुम लोग उसीको ग्रहण करो। उससे विपरीत कभी मत चलो। किन्तु उसी की प्राप्ति के लिये विरोध को छोड़ के परस्पर सम्मति में रहो। जिससे तुम्हारा उत्तम सुख सब दिन बढ़ता जाय और किसी प्रकार का दुःख न हो। (संवदध्वं०) तुम लोग विरुद्ध वाद को छोड़ के परस्पर अर्थात् आपस में प्रीति के साथ पढ़ना, पढ़ाना, प्रश्न, उत्तर सहित संवाद करो। जिससे तुम्हारी सत्यविद्या नित्य बढ़ती रहे। (संवो मनांसि जानताम्) तुम लोग अपने यथार्थ ज्ञान को नित्य बढ़ाते रहो। जिससे तुम्हारा मन प्रकाशयुक्त होकर

पुरुषार्थ को नित्य बढ़ावे। जिससे तुम लोग ज्ञानी होके नित्य आनन्द में बने रहो और तुम लोगों को धर्म का ही सेवन करना चाहिये, अधर्म का नहीं। (देवा भागं य०) जैसे पक्षपातरहित धर्मात्मा विद्वान् लोग वेदरीति से सत्यधर्म का आचरण करते हैं, उसी प्रकार से तुम भी करो। क्योंकि धर्म का ज्ञान तीन प्रकार से होता है। एक तो धर्मात्मा विद्वानों की शिक्षा, दूसरा आत्मा की शुद्धि तथा सत्य को जानने की इच्छा और तीसरा परमेश्वर की कही वेदविद्या को जानने से ही मनुष्यों को सत्य असत्य का यथावत् बोध होता है, अन्यथा नहीं ॥ १ ॥

स॒मा॒नो मन्त्र॒: समि॑तिः समा॒नी स॑मा॒नं मन॑: स॒ह चि॒त्तमे॑षाम्। स॒मा॒नं मन्त्र॑म॒भि म॑न्त्रये वः समा॒नेन॑ वो ह॒विषा॑ जुहोमि ॥ २ ॥ ऋ० अ० ८। अ० ८। व० ४९। मं० ३ ॥

भाष्यम्

(समानो मन्त्रः०) हे मानवाः ! वो युष्माकं मन्त्रोऽर्थान्मामीश्वरमारभ्य पृथिवीपर्य्यन्तानां गुप्तप्रसिद्धसामर्थ्यगुणानां पदार्थानां भाषणमुपदेशनं ज्ञानं वा भवति यस्मिन् येन वा स मन्त्रो विचारो भवितुमर्हति। तद्यथा। राज्ञो मन्त्री सत्यासत्यविवेककर्त्तेत्यर्थः, सोऽपि सत्यज्ञानफलः, सर्वोपकारकः, समानस्तुल्योऽर्थाद्विरोधरहित एव भवतु। यदा बहुभिर्मनुष्यैर्मिलित्वा संदिग्धपदार्थानां विचारः कर्त्तव्यो भवेत्तदा प्रथमतः पृथक् पृथगपि सभासदां मतानि भवेयुस्तत्रापि सर्वेभ्यः सारं गृहीत्वा यद्यत्सर्वमनुष्यहितकारकं सद्गुणलक्षणान्वितं मतं स्यात्तत्तत्सर्वं ज्ञात्वैकत्र कृत्वा नित्यं समाचरत। यतः प्रतिदिनं सर्वेषां मनुष्याणामुत्तरोत्तरमुत्तमं सुखं वर्धेत। तथा (समितिः समानी) समितिः सामाजिकनियमव्यवस्था,-ऽर्थाद्या न्यायप्रचाराढ्या, सर्वमनुष्याणां मान्यज्ञानप्रदा, ब्रह्मचर्य्यविद्याभ्यासशुभगुणसाधिका, शिष्टसभया राज्यप्रबन्धाद्याल्हादिता, परमार्थव्यवहारशोधिका, बुद्धिशरीरबलारोग्यवर्द्धिनी शुभमर्य्यादापि समानी सर्वमनुष्यस्वतन्त्रदानसुखवर्धनायैकरसैव कार्य्येति, (समानं मनः०) मनः संकल्पविकल्पात्मकं, संकल्पोऽभिलाषेच्छेत्यादि, विकल्पोऽप्रीतिर्द्वेष इत्यादि। शुभगुणान्प्रति संकल्पः, अशुभगुणान्प्रति विकल्पश्च रक्षणीयः। एतद्धर्मकं युष्माकं मनः समानमन्योन्यमविरुद्धस्वभावमेवास्तु। यच्चित्तं पूर्वपरानुभूतं स्मरणात्मकं धर्मेश्वराचिन्तनं तदपि समानमर्थात्सर्वप्राणिनां दुःखनाशाय सुखवर्धनाय च स्वात्मवत्सम्यक् पुरुषार्थेनैव कार्य्यम्,